Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योग-वेदान्त

वर्ष : २२ मार्च : १९७२ अङ्क : ३

१८८७ — १९६३

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परमाध्यक्ष के श्रीमुख से............

आध्यात्मिक जीवन के मौलिक सिद्धान्त अपरिवर्तनशील होते हैं। भिन्न-भिन्न सन्त, महात्मा, तपस्वी, महापुरुष आदि उन्हें अनेक भाषाओं में, भिन्न-भिन्न शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं; किन्तु हम यदि गहराई से उनपर विचार करें तो ज्ञात होगा कि उनमें पूर्ण समानता है। हम अपनी बाह्य दृष्टि से, भाषा के जाल में फँस कर उनमें अन्तर कर देते हैं; किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उनमें कोई भेद नहीं होता।

—स्वामी चिदानन्द

अभिज्ञापन

दिव्य जीवन सङ्घ से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित अनेक भक्त तथा सज्जन मासिक पत्रिकाएं भेजने, सदस्यता-शुल्क तथा पत्रिकाओं के वार्षिक चन्दे के विप्रेषण, पुस्तकों तथा औषधियों के क्रय आदि जैसे संस्था के वैभागिक प्रशासन-सम्बन्धी सामान्य विषयों पर प्रमुखालय के महासचिव तथा सचिव को उनके (नाम के) पते पर व्यक्तिगत पत्र लिखा करते हैं। नाम के पते पर पत्र-व्यवहार तथा शुल्क-विप्रेषण आदि की यह विधि न केवल अनावश्यक है अपितु महासचिव तथा सचिव के कार्यालय में अतिरिक्त कार्य का कारण भी बनती है, साथ ही किसी कारणवश सम्बोधित पदधारी के स्थान से बाहर जाने की स्थिति में इसके कारण क्षिप्र कार्यवाही में बिलम्ब भी हो सकता है जबकि यही बातें यदि पदधारी के व्यक्तिगत नाम का उल्लेख न कर पदेन सम्बोधित की जायें तो वे सम्बोधित विभाग द्वारा सामान्य रूप से स्वतः ही निपटायी जा सकती हैं। अतः निवेदन है कि अमुक सूचना पदधारियों को व्यक्तिगत रूप से पहुँचाने की नितान्त आवश्यकता अनुभव होने की स्थिति के अतिरिक्त सभी पत्र-व्यवहार तथा विप्रेषण केवल उनके पदनाम से न कि व्यक्तिगत नाम से सम्बोधित करें।

× × ×

ऐसा देखा गया है कि बाहर के अनेक साधुभावी भक्त जन, जो दिव्य जीवन सङ्घ द्वारा प्रवर्तित आध्यात्मिक ज्ञान के प्रसार-कार्य में सच्ची अभिरुचि रखते हैं, कुछ प्रकाशन-कार्य करते हैं, कुछ पुस्तकों का उन्मोचन करते हैं और उन पर 'स्वामी कृष्णानन्द जी, दिव्य जीवन सङ्घ, शिवानन्द-नगर द्वारा प्रकाशित' मुद्रित करते हैं। यद्यपि जिस भावना से यह सत्कार्य किया जा रहा है प्रमुखालय उसकी पूर्णतः सराहना करता है; किन्तु प्रकाशक का नाम मुद्रित करने की इस प्रकार की अपनायी गयी यह कार्य-प्रणाली किञ्चित् अवैध है; क्योंकि प्रायः ऐसा हुआ है कि पुस्तक अथवा पुस्तकों के विमोचन के उत्तरदायी व्यक्तियों ने प्रकाशक के रूप में जिस व्यक्ति का नाम उसमें मुद्रित है, उनसे परामर्श नहीं किया। अतः निवेदन है कि जो व्यक्ति, किसी भी कारण से, किसी भी प्रकाशन में दिव्य जीवन सङ्घ के प्रमुखालय के परमाध्यक्ष, महासचिव अथवा सचिव का नाम मुद्रित करना चाहते हों— उन्हें चाहिए कि पुस्तक आदि में ऐसे नाम मुद्रण से पूर्व वे प्रमुखालय से इसकी लिखित पूर्व अनुमति प्राप्त कर लें। नीति और सिद्धान्त की दृष्टि से यह आवश्यक है और हमें विश्वास है कि सभी महानुभाव इस सुझाव का अनुसरण करने की कृपा करेंगे।

—दिव्य जीवन सङ्घ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योग-वेदान्त

भक्ति, धर्म, सदाचार और आरोग्य-शिक्षा का मासिक पत्र

सम्पादक—श्री स्वामी चन्द्रशेखरानन्द सरस्वती

वर्ष—२२ मार्च—१९७२ अङ्क—३

उसकी शरण

— श्री श्रीकृष्णचन्द्र शेंदरे 'हृदयेश', बी०ए०, एल-एल०बी०, एडवोकेट —

(१)

तेरे चरणों की छाया में
हे प्रभु दो हमको स्थान।
ताकि हमारे आकुल-व्याकुल
मन को मिल जावे कुछ त्राण।।

(२)

बहुत थक चुके, बल न रहा अब,
आगे और न बढ़ पावें।
कैसे हा! निबाह होगा अब,
कुछ भी समझ नहीं पावें।।

(३)

दिनकर की प्रातः किरणों में
पक्षीगण करते जब गान।
या कि सांझ की मधु बेला में
आकुल जब रहते हैं प्राण।।

(४)

तेरी ही स्मृति में तब बस
मन को मिलता है विश्राम।
तेरे चरण-शरण का बल दो,
हे करुणामय! करुणाधाम।।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गताङ्क से आगे—

रामचरितमानस पर आधारित—

साधक की समस्याएं तथा उनका समाधान

—श्री रामकिङ्कर जी उपाध्याय

नारद जी ने भी यही सोचा था। उन्हें गर्व हुआ था कि शङ्कर जी और मुझमें अन्तर यही है कि शङ्कर जी को काम पर क्रोध आ गया और मैंने काम को क्षमा कर दिया। शङ्कर जी क्रोधी हैं और मैं क्रोध-रहित हूँ। इसपर भगवान् मुस्करा पड़े और सबने देखा कि नारद जी को भी क्रोध आया और यह क्रोध आया किस पर ? क्रोध आया भगवान् राम पर। **जो काम पर क्रोध नहीं करता है उसे राम पर ही क्रोध आता है।** जो व्यक्ति बुराई के प्रति सहिष्णु बनेगा, अन्त में उसकी असहिष्णुता कहीं न कहीं प्रकट होकर रहेगी। यह तो शङ्कर जी का चातुर्य है कि क्रोध करना ही है तो काम पर क्यों न किया जाय। यदि किसी वस्तु के प्रति असहिष्णु होना ही है तो बुराई के प्रति ही; किन्तु बुराई में भलाई देखना हम लोगों का स्वभाव है। विभीषण के जीवन के प्रारम्भ में यही समस्या है। अब प्रश्न यह होता है कि रावण उसे पूजा आदि की सुविधा क्यों दे देता है ? पूर्व-जन्म का वह अनुभवी है। रावण पूर्व-जन्म में हिरण्यकश्यपु था, उस समय उसने अपने पुत्र प्रह्लाद को भगवान् का नाम लेने से रोका था। दूसरे जन्म में वह इतना अनुभवी हो गया कि अपने भाई को पूजा की सुविधा दे दी। आखिर उसने ऐसा क्यों किया ? पहले जन्म में उसने प्रह्लाद को रोका था तो उसे पाँच वर्ष की ही अवस्था में भगवान् मिल गये और दूसरे जन्म में विभीषण को पूजा की सुविधा दे दी है तो भगवान् को पाने में न जाने उसे कितने सौ वर्ष लग जायेंगे। कभी-कभी असुविधा से चेष्टा बढ़ जाती है और सुविधा से मनुष्य निश्चिन्त हो जाता है, जैसा कि प्रह्लाद और विभीषण के जीवन में हुआ। हिरण्यकश्यपु प्रह्लाद से कहता है कि भगवान् का नाम न लो। प्रह्लाद समझते हैं कि 'नहीं-नहीं, यह तो हमारे मार्ग का बाधक है। हमें भगवान् की ओर बढ़ने से रोकता है।' यहाँ जब रावण विभीषण से यह कह देता है कि भजन करो तो वह समझते हैं कि यह हमारा सहायक है; किन्तु यहाँ एक अत्यन्त विचारणीय बात यह है कि साधना किसकी प्रेरणा से हो रही है ? कभी-कभी साधना में जो प्रतिकूलता प्रतीत होती है और जब कहा जाता है कि बहुत दिन से साधना करने पर भी साधना का लक्ष्य पूरा नहीं होता तो अन्तर्मन में बैठकर देखिए कि किसकी प्रेरणा से साधना की जा रही है—रावण की प्रेरणा से साधना हो रही है या ज्ञान की प्रेरणा से और यदि अन्तर्मन में बैठकर देखें तो स्पष्ट दिखायी देगा कि जब रावण साधना में सहायक बने तो रावण का उद्देश्य क्या हो सकता है। यह तो ठीक उसी प्रकार की बात है न। कहा जाता है कि एक साधक नित्य नियम से प्रातः चार बजे उठकर प्रार्थना किया करता था और एक दिन चार बजे सबेरे नींद न खुलने की सम्भावना हुई; क्योंकि नींद गहरी थी। अचानक किसी ने आकर उसे जगा दिया और वह व्यक्ति जब जाग कर बैठ गया और पूजा समाप्त कर चुका तो जिन्होंने उसे जगाया था, उन्हें धन्यवाद दिया कि 'मैं तो आज इतनी गहरी नींद में था कि शायद उठ न पाता, अतः आपने जगाकर बड़ी कृपा की। वास्तव में आप कोई सन्त हैं जो सोते हुए व्यक्ति को जगा दिये। मैं आपकी कृपा के लिए आभारी हूँ।' इस पर जगाने वाले ने कहा—"क्या तुम्हें मैं अपना वास्तविक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परिचय दूँ ?" साधक ने उत्तर दिया—"हाँ महाराज ! अवश्य ही अपना वास्तविक परिचय दीजिए।" जगाने वाले ने कहा—"मैं पाप हूँ।" साधक ने कहा—"यह तो सन्तों की भाषा है। वह अपने आप को बुरा कहा करते हैं—नहीं, कहीं पाप प्रार्थना के लिए जगायेगा, पाप तो और सुला देगा। अब तो यह सिद्ध हो गया कि आप पाप नहीं कोई सिद्ध हैं।" इस पर पाप ने कहा—"नहीं-नहीं, मैं सचमुच पाप हूँ और मैंने जान-बूझ कर तुमको जगा दिया।" साधक ने पूछा—"ऐसा आपने क्यों किया ?" पाप ने कहा—"बात यह हुई कि आज से पाँच वर्ष पूर्व एक दिन तुम्हारी नींद लग गयी थी और जब चार बजे तुम्हारी नींद न खुल कर पाँच बजे खुली तो मैंने देखा कि उस दिन प्रार्थना में तुम बहुत ही रोये। तुम्हें पश्चात्ताप हुआ कि 'भगवान्, मैं तुम्हारी प्रार्थना भी समय से नहीं कर पाता।' उसका परिणाम यह हुआ कि तुम उस दिन भगवान् के बिलकुल निकट पहुँच गये। इसी से आज मुझे डर लगा कि कहीं आज भी तुम्हें नींद आ गयी और फिर तुम्हें पश्चात्ताप और व्याकुलता आयी तब तो भगवान् से तुम मिल ही जाओगे; इसलिए मैंने सोचा कि नियम का पालन करा दें तो तुम कम-से-कम भगवान् से दूर तो रहोगे। नियम का पालन करोगे तो 'उससे' दूर रहोगे, इस गर्व में रहोगे कि हम सवेरे उठकर नियम से प्रार्थना कर लेते हैं और मुझे यह सन्तोष रहेगा कि तुम भगवान् के पास नहीं पहुँच पाये।" पाप चाहता है कि साधक क्रिया के रूप में साधना में प्रवृत्त रहे और भाव तथा विवेक को तिलाञ्जलि दे दे; अतः जब क्रिया के रूप में पूजा होगी, भावना और विवेक उनके साथ में न होंगे तो परिणाम उसका यह होगा कि इस प्रकार क्रिया निष्फल हो जायगी। गोस्वामी जी कहते हैं कि साधना में, भगवान् की आराधना में, विचार की, विवेक की आवश्यकता है। रावण की कृपा से पूजा हो रही है और विभीषण जी सन्तुष्ट हैं, प्रसन्न हैं, आनन्दमग्न हैं कि बड़े आराम से साधना चल रही है; किन्तु देखिए न, कितनी विचार-शून्य साधना चल रही है। रावण अत्याचार करते-करते इस सीमा तक चला गया कि श्री सीता जी को चुरा कर ले आया। विभीषण जिनकी पूजा करते हैं, जिनकी आराधना करते हैं, जिनका ध्यान करते हैं, जिनकी वन्दना करते हैं, उस साक्षात् भक्ति को ही रावण चुरा कर ले आता है। यद्यपि विभीषण विद्रोह करता है; फिर भी उसको यह सन्तोष है कि अब भी उसकी भक्ति सार्थक है, उसकी पूजा फलप्रद है। ऐसा लगता है कि जीव जब मोह-निमग्न होता है तो उसकी स्थिति यह होती है कि भगवान् के प्रति भी भक्ति और रावण के प्रति भी भक्ति, रावण में भी गुण-बुद्धि और भगवान् में भी गुण-बुद्धि और जब तक साधक की यह स्थिति रहेगी; तब तक उसका जीवन दो भागों में बँटा रहेगा। एक भाग में वह पूजा-पाठ और साधना करता है तथा दूसरे भाग में वह रावण की बुराइयों में सहयोगी बन जाता है। वह दुर्विचारों को क्रियान्वित होते हुए देखता रहता है और सन्तुष्ट हो जाता है कि 'कम से कम उसके जीवन में तो ये दिन अच्छे बीत ही रहे हैं। हाँ, कभी-कभी स्खलन हो जाता है तो इसमें कोई आपत्ति नहीं।' अब प्रश्न उठता है कि वस्तुतः यह जो दोनों का द्वन्द्व चलता रहता है, इसकी समाप्ति कब होगी ? गोस्वामी जी इसके उत्तर का सङ्केत देते हैं—सत्सङ्ग, सन्त और सद्गुरु के माध्यम से पहली बार व्यक्ति को अपनी मूल-त्रुटि का भान होता है। उन्हें (विभीषण को) अपनी त्रुटि का तब पता चलता है। श्री सीता जी लङ्का में बन्दिनी हैं और विभीषण जी ने एक दिन भी उनको नहीं देखा। कितना बड़ा आश्चर्य है यह ! विभीषण जी जिनकी पूजा करते हैं, वे प्रत्यक्ष रूप से, साकार रूप से लङ्का में बन्दिनी हैं और विभीषण जी को पता है कि वह कहाँ हैं ? क्योंकि हनुमान् जी को उन्होंने बताया कि वह कहाँ हैं; किन्तु स्वयं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक बार भी नहीं गये। भला इससे विचित्र बात क्या होगी? इसी को लक्ष्य कर गोस्वामी जी ने कहा है —

"एर्काहि एक सिखावत, जपत न आप।
तुलसी राम प्रेम कर बाँटत पाप॥"

दूसरे को तो आप बताते हैं कि जप करना चाहिए; किन्तु स्वयं नहीं करते, यही प्रवृत्ति है विभीषण की। जानते हैं कि सीता जी कहाँ हैं, भक्ति कहाँ है। साक्षात् लङ्का में भक्ति देवी को जानकर भी, उपाय जानते हुए भी वहाँ तक न पहुँचने की आकांक्षा, वाञ्छा, सङ्कोच, भय—जो कुछ भी कह लीजिए—उनमें है और तब एक समय आता है जब भगवान् देखते हैं कि जो इतने दिनों से क्रिया रूप में साधना कर रहा है, भजन कर रहा है, उसमें विवेक का जागरण नहीं हुआ, भावना का जागरण नहीं हुआ। यह वस्तुतः सो रहा है, स्वप्न-राज्य में इसकी साधना चल रही है, प्रत्यक्ष में इसकी साधना नहीं है; और तब प्रभु की कृपा से सन्त, सद्गुरु का आगमन होता है। हनुमान् जी आते हैं और सारी लङ्का में ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अन्त में विभीषण के द्वार पर पहुँचते हैं। इस प्रसङ्ग के वर्णन में गोस्वामी जी ने बड़ी ही सुन्दर भाषा का प्रयोग किया है। हनुमान् जी द्वार पर खड़े हैं कि —

"ताही समय विभीषण जागा।"

नींद खुल गयी। अभी तक कुम्भकरण सो रहा था, सभी जानते हैं; पर विभीषण भी सो रहा था—इसे कम लोग ही जानते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि तमोगुणी सोता है तो दिखायी देता है; पर साधक भी सोता है, यह लोगों को बहुत कम दिखायी देता है। जो जागते हैं वह भी सोते हुए दिखायी दे सकते हैं। स्मरण रखिए, कुम्भकरण का सोना प्रत्यक्ष है; पर साधक का सोना भी होता है। वह जागता हुआ भी सो रहा है। गोस्वामी जी ने यहाँ दो दर्शन बताये--जागते हुए सोना और सोते हुए जागना। भक्त क्या करता है? वह सोते हुए जागता है। गोस्वामी जी भक्त का वर्णन करते हैं —

"रघुपति भगति करत कठिनाई।"

पर उधर भक्त ऐसा भोगी है जो निद्रा का परित्याग करके सोता है। 'सोवैं निद्रामय भोगी' —साधक जो संसार के अन्तर्द्वन्द में पड़ा हुआ दिखायी दे रहा है; वह सो रहा है; किन्तु सन्त सद्गुरु आते हैं, तब जाग जाता है और जागने के बाद दोनों का मिलन और मिलन के पश्चात् सत्सङ्ग होता है। सत्सङ्ग में जब भगवान् राम के गुणों का वर्णन हुआ तो साधक के मन में ग्लानि हुई, पश्चात्ताप हुआ कि 'इतने दिनों तक मैं भगवान् के पास नहीं गया।' भगवान् के पास पहुँचने में जितनी भी देर लग रही है साधक का सङ्कोच उतना ही बढ़ता जाता है। भगवान् उलाहना देंगे, पूछेंगे कि 'अब तक कहाँ रहे? इतना समय कहाँ गँवा दिया?' परन्तु साधक का यह भय निराधार है; क्योंकि भगवान् के यहाँ यह डर नहीं है कि भगवान् उलाहना देंगे। उनका द्वार तो खुला हुआ है। जो जाता है उसे ही वे स्वीकार कर लेते हैं; पर जीव अपनी समस्या से सन्त्रस्त है। जब विभीषण जी पूछते हैं—'क्या प्रभु मुझपर कृपा करेंगे?' तब श्री हनुमान् उन्हें सान्त्वना देते हुए कहते हैं कि मुझे देख लो —

"कहहु कवन मैं परम कुलीना।
कपि चञ्चल, सब ही विधि हीना।"

बन्दर का दृष्टान्त बड़ा सार्थक है। हनुमान् जी समुद्र लाँघ गये तो बड़ा आश्चर्य होता है, इसका तात्पर्य क्या है? साधारणतः बन्दर दिनभर में जितनी छलाँग लगाते हैं उनको यदि एक साथ जोड़ डालिए तो चार सौ कोस से कम किसी की छलाँग नहीं होगी। हनुमान् जी और अन्य बन्दरों की छलाँग में अन्तर केवल इतना ही है कि वे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

थोड़ी-थोड़ी छलाँग लगा कर व्यर्थ कर रहे हैं। यदि वही छलाँग एक साथ लगायी जाय तो समुद्र पार करके सीता के दर्शन हो जायें। इसका अभिप्राय यह है कि संसारी व्यक्ति छोटी-छोटी छलाँगें तो लगा ही रहा है; पर वे व्यर्थ हैं। उसकी उछल-कूद निरर्थक ही चल रही है और वही मन की छलाँग यदि लम्बी हो जाय तो वह भगवान् के चरणों में पहुँच जाय। हनुमान् जी ने कहा कि हमारे प्रभु बन्दर पर भी कृपा कर सकते हैं। हमारे दो भगवान् बड़े प्रसिद्ध हैं—भगवान् कृष्ण, जो गौओं के चरवाहे हैं और भगवान् राम, ये बन्दरों के चरवाहे हैं। गाय और बन्दर—दोनों के साथ जुड़े हुए हैं। गाय के लिए दो और शब्द हैं। 'गऊ' और 'गो'। 'गो' इन्द्रियों के लिए भी संस्कृत में आया है —

"गो गोचर जहँ लगि मन जायी।"

इसका अभिप्राय क्या है? इन्द्रियाँ बहिर्मुखी हैं और जब श्रीकृष्ण स्वयं उन्हें चराने लग जाते हैं, अपनी वंशी बजाने लग जाते हैं, उस समय गायें यदि इनके साथ रहती हैं या इन्द्रियाँ इनकी सेवा में रहती हैं तब 'रूप' का दर्शन होता है, 'नाद' का भी श्रवण होता है और वे भटकती नहीं हैं; किन्तु जब ये गो (इन्द्रियाँ या गऊ) श्रीकृष्ण का साथ छोड़ देती हैं तो श्रीमद्भागवत में आता है कि वन में आग लग गयी और गायें उसमें घिर गयीं। इसका अभिप्राय यह है कि जहाँ इन्द्रियों ने भगवान् का सान्निध्य छोड़ा और मात्र विषय के बन में प्रवेश किया, वहीं पर दावाग्नि से जलने की सम्भावना है, आशङ्का है।

गोस्वामी जी ने थोड़ा-सा पक्षपात कर लिया। कोई गाय को चराये तो कुछ मिलेगा; किन्तु यदि बन्दर को चराये तो क्या मिलेगा? गाय को चराने से तो मिलेगा दूध, घी; किन्तु बन्दर को चराइए तो निरर्थक है। जीव का मन बड़ा चञ्चल है। जैसे बन्दर कभी स्थिर नहीं रहता, यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ भागता रहता है; उसी प्रकार जीव का मन अस्थिर है; पर यही मन यदि भगवान् की सेवा में लग जाय तो भगवान् मन की उस चञ्चलता का भी लाभ उठाते हैं और चञ्चलता की छलाँग के द्वारा उसे सत्य का साक्षात्कार करा देते हैं; भक्त को अपना दर्शन दे देते हैं। हनुमान् जी ने विभीषण से कहा, 'यदि प्रभु की कृपा बन्दर पर है तो आप पर क्यों नहीं होगी? आप ऐसा क्यों सोचते हैं?' जीव के अन्तःकरण में जागृति हुई, आशा का सन्देश जगा और उसके पश्चात् उसने निश्चय कर लिया कि अब हम भगवान् की शरण में जायेंगे। हनुमान् जी ने देखा कि अब निश्चय ठीक स्थिति पर पहुँच गया तो उन्होंने विभीषण से पूछ लिया, "श्री सीता जी कहाँ हैं?"

"तब हनुमन्त कहा सुनु भ्राता।
देखी चहौं जानकी माता॥"

यहाँ हनुमान् जी ने 'भ्राता' शब्द का प्रयोग क्यों किया? क्योंकि विभीषण सोच बैठे थे कि रावण मेरा भाई है। हनुमान् जी ने कहा—'भाई, अब निर्णय कर लो कि कौन तुम्हारा सच्चा भाई है? रावण को भाई मानोगे तो दूसरे मार्ग पर चलोगे और यदि मुझे भाई मानोगे तो अन्य मार्ग पर। चुनाव करो कि शरीर का भाई वास्तविक भाई है या भाव का भाई। शरीर के भाई को भाई मानोगे तो रावण के अनुयायी बनोगे और यदि भाव की दृष्टि से मुझे भाई मानोगे, हम दोनों राम के भक्त हैं, इस नाते भाई हैं; दोनों ही श्री किशोरी जी के पुत्र हैं इस नाते भाई हैं तो भाई को भाई का साथ देना चाहिए।' विभीषण ने निर्णय कर लिया कि भाई को भाई का साथ देना है और उन्होंने श्री हनुमान् जी को पता बता दिया कि श्री सीता जी कहाँ हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसके बाद की कथा लम्बी है। जब श्री हनुमान् जी रावण की सभा में बन्दी बना कर लाये जाते हैं तो विभीषण भी वहाँ पहुँच जाते हैं। कभी-कभी साधक के जीवन में समस्या सुलझते-सुलझते उलझने लग जाती है। जैसे कोई बच्चा प्रातःकाल सो रहा हो और उसको जरा जगाकर बैठा दें तो देखा जाता है कि बच्चा उस समय तो उठकर बैठ जाता है, पर जगाने वाला गया नहीं कि वह फिर सोने लग जाता है। ऐसे ही विभीषण को फिर से नींद आने लगी और यह नींद तब आने लगी जब उन्होंने श्री हनुमान् जी को रावण की सभा में बैठे देखा। उस समय उन्हें ऐसा लगा कि हमारा भाई रावण तो बड़ा शक्तिशाली है। उसने हनुमान् जी को बन्दी बना लिया। जब स्वयं हनुमान् जी ही बँध गये तो वह मुक्ति का सन्देश दूसरे को कैसे देंगे? उन्हें थोड़ा-थोड़ा संशय होने लगा। यहाँ गोस्वामी जी ने संकेत किया है कि रावण क्रुद्ध है और आज्ञा देता है कि 'इसको मार डालो।' जिस समय रावण के सैनिक तलवार निकाल कर हनुमान् जी को मारने के लिए चले तो विभीषण ने ध्यान से देखा कि हनुमान् जी तो अपने बचने की कोई चेष्टा ही नहीं कर रहे हैं। अब उनको घबराहट हुई। उन्होंने सोचा कि इन्होंने कम से कम भक्ति का बड़ा सुन्दर उपदेश दिया है, इसलिए इन्हें छुड़ाना चाहिए। ऐसा सोचकर कहा —

"नीति बिरोध न मारिअ दूता।"

—इनको मारना तो नीति के विरुद्ध है। रावण ने तुरन्त उनकी बात मान ली। उसने कहा—'ठीक है, छोटे भाई बड़े विद्वान् हैं, नीतिज्ञ हैं, नीति के पण्डित हैं, यदि उनकी राय है तो मैं मृत्यु का आदेश वापस लेता हूँ।' अब विभीषण यह सोचकर गदगद हो गये कि वाह! स्वयं महाराज रावण मुझसे कितना प्रेम करते हैं। इससे भगवान् का तो प्रेम दूर जाता रहा और भाई का प्रेम फिर दिखायी देने लगा। जब हनुमान् जी ने विभीषण की ओर देखा तो समझ गये कि इसे तो फिर नींद आने लगी। यह तो बड़ी समस्या है। इसको तो फिर रावण के गुण दिखायी देने लगे। इसी समय रावण ने कहा कि 'मृत्यु-दण्ड तो वापस ले लिया जायेगा; किन्तु दण्ड दिया जायगा अवश्य', और दण्ड निर्धारित करते हुए बोला —

"कपि कैं ममता पूँछ पर, सबहिं कहौं समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ॥"

—बन्दर की पूँछ में कपड़ा लपेटो, उसपर घी-तेल डालो और आग लगा दो। पूँछ जल जायगी, तब यह अपने प्रभु को, जिनकी बड़ी डींग हाँकता है, ले आयेगा। उस समय पता चलेगा कि उनमें कितनी विशेषता है।

जब हनुमान् जी की पूँछ में कपड़ा लपेटा जाने लगा, घी-तेल डाला जाने लगा तो उन्होंने एक खेल शुरू किया। उन्होंने अपनी पूँछ को इतना बढ़ाना आरम्भ कर दिया कि ज्यों-ज्यों कपडा लपेटा जाता है, घी-तेल डाला जाता है त्यों-त्यों पूँछ बढ़ती जाती है। लोग उधर सोच रहे हैं कि यह क्या हो रहा है; किन्तु रावण पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। वह सोचता है कि बड़े-बड़े चमत्कार होते हैं; इस बन्दर की पूँछ में भी कुछ चमत्कार होगा। अस्तु! कोई बात नहीं है। कोई मुझसे बाजी थोड़े ही जीत ले जायेगा; पर गोस्वामी जी का सङ्केत क्या है? रावण ने जब कहा कि पूँछ जला दो, तो राक्षसों को आश्चर्य हुआ कि 'यह पूँछ जलाने की बात क्यों कह रहे हैं? यह क्यों नहीं कह देते कि नाक काट लो, कान काट लो। कम-से-कम शूर्पणखा का बदला तो चुक जाता।' इस पर रावण ने कहा—'यह बात नहीं। मनुष्य की ममता जैसे नाक में होती है, वैसे ही बन्दर की ममता पूँछ में होती है; इसलिए इसकी पूँछ ही जलाओ। ममता पर प्रहार करने से ही दुःख होता है। इसको दुःख देना है तो इसकी ममता पर ही प्रहार करो।'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब देखें कि उधर हनुमान् जी ने क्या किया? उन्होंने पहले तो अपनी पूँछ जो छोटी थी, वह बढ़ायी और बाद में फिर छोटी बना ली। हनुमान् जी ने मानों रावण को उत्तर दे दिया कि जो ममता को फैलाना और समेटना दोनों जानता है उसे ममता के कारण दुःख नहीं होता; पर जो ममता को केवल फैलाना ही जानता है वही उससे दुःखी होता है। तुम्हारी ममता तो चार सौ कोस फैली हुई है, वह जलेगी। बस, अपनी ममता तो सिमटी-सिमटाई है, उसे चाहें जितना बढ़ायें और चाहें जितना समेट लें; वह जलने वाली नहीं है। अन्त में जब उसमें आग लगायी गयी तो हनुमान् जी ने सोचा कि सारी लङ्का को आग नहीं लगानी है। उन्होंने पूरी लङ्का को नहीं जलाया; केवल लङ्का के घरों को ही आग लगायी; परन्तु विभीषण के तो अज्ञान में ही आग लगा दी। लगता तो है कि विभीषण के यहाँ आग नहीं लगी; परन्तु वस्तुतः विभीषण का जो घर था उसका हनुमान् जी ने क्या किया —

"जारा नगरु, निमिष इक माहीं।
एक विभीषन कर ग्रह नाहीं।।"

सारी लङ्का जल गयी; किन्तु विभीषण ही का घर नहीं जला। यदि विचार की दृष्टि से इसका अर्थ लें तो है—**"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।"** विभीषण जीव है और विभीषण ही इस लङ्का में जीवित है और यदि भावनात्मक दृष्टि से इसका अर्थ लें तो उसमें भगवान् की भक्ति है, इसलिए वह सुरक्षित है और गोस्वामी जी बड़ी कुशलता से साधक को जो बताना चाहते हैं यदि उस दृष्टि से विचार करें तो हनुमान् जी ने निर्णय किया कि रावण का विभीषण से जब तक झगड़ा नहीं हो जायेगा, जब तक दुर्गुण बिलकुल विच्छिन्न नहीं हो जायेगा, तब तक वह भगवान् की शरण में नहीं जायेगा। फिर इसका उपाय क्या है? उन्होंने सोचा कि इसका घर छोड़ दो। यहाँ हनुमान् जी ने राजनीति की दृष्टि से भी चतुराई की। हनुमान् जी की पूँछ में आग लगाने की आज्ञा केवल रावण ने दी थी। अतः यदि हनुमान् जी सारी लङ्का में आग लगाते तो यह अधर्म ही होता। इसलिए हनुमान् जी ने अपनी पूँछ को लम्बा किया था कि जिसके-जिसके घर से घी-तेल तथा कपड़ा आयेगा, उसी के घर में आग लगायेंगे। जब लङ्का के सब लोग अपने-अपने घरों से घी-तेल तथा कपड़ा ले आये तो उनके घरों में आग लगाने में कोई दोष नहीं रहा। सब लोगों ने जलाने की चेष्टा की, इसलिए उनकी लङ्का जलेगी। और जब विभीषण का घर जलने से छूट गया, तब बस, उसी दिन से रावण की स्नेह-दृष्टि, जो विभीषण पर थी, बदल गयी। रावण ने सोचा—'मुझसे बड़ी भूल हो गयी। अगर मैंने बन्दर को मरवा डाला होता तो लङ्का कैसे जलती? अतः सारा अनर्थ इस विभीषण के द्वारा हुआ और लगता है कि ये दोनों परस्पर मिले हुए हैं; क्योंकि जब मैंने उसको (हनुमान् को) मृत्यु-दण्ड दिया तो इसने रोका और जब उसने नगर जलाया तो इसी विभीषण का घर छोड़ दिया।' अब विभीषण पर से रावण का विश्वास उठ गया। जब साधक का बुराइयों से झगड़ा हो जाय, दुर्गुणों से समझौता न रहे, तभी साधक के मन में शरणागति की तीव्र-इच्छा उत्पन्न होती है। उस समय तो रावण ने अपने क्रोध को तत्काल दबा लिया; जिससे विभीषण का उत्साह बढ़ा और वे सोचने लगे कि रावण को भी भक्त बना डालें। स्वयं तो पूरे भक्त बन न पाये और रावण को भक्त बनाने की चिन्ता हो गयी। बस यही समस्या है, जब साधक समय से पहले ही किसी को मोह-मुक्त करना चाहे। स्वयं तो मोह-मुक्त हो नहीं पाये और रावण को वासना-मुक्त करने चले। उसे समझाने लगे—"आप श्री सीता जी को भगवान् राम को देदें, आपका कल्याण होगा।"रावण को पुरानी बात याद आने लगी, बोला—"तेरी एक बात मानी तो लङ्का जली और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब तू क्या मेरा सर्वनाश कराने पर ही तुला हुआ है ?" इस पर उसे इतना क्रोध आया कि उसने कस करके अपना चरण-प्रहार विभीषण की छाती पर किया और कह दिया —

"मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती।
सठ मिलु जाय, तिन्हहिं कहु नीती ॥"

—रहता है मेरे नगर में और करता है प्रीति शत्रुओं से, जा-जा। इसका अभिप्राय क्या है ? यह जो जीवन है उसपर किसका शासन होना चाहिए— रावण का अथवा विभीषण का ? गोस्वामी जी कहते हैं, रावण मूर्त्तिमान् मोह है और विभीषण मूर्त्तिमान् जीव। यहाँ जो दो शासकों का प्रश्न है उनमें बड़ा भाई कौन है 'मोह' अथवा 'जीव' ? गोस्वामी जी का कहना है कि जीवन में तो मोह ही अपने को बड़ा भाई मान बैठा है; पर सत्य यह यह है कि जीवन में बड़ा भाई मोह नहीं है। वस्तुतः बड़ा तो जीव ही है पर उसका जीवन पर शासन नहीं हो पाता; क्योंकि —

"विषय करन सुर जीव समेता।
सकल एक तें एक सचेता ॥
सब कर परम प्रकाशक जोई।
राम अनादि अवधपुर सोई ॥"

—विभीषण वस्तुतः जीव की दृष्टि से रावण से बड़े हैं; पर रावण प्रत्यक्ष लोक दृष्टि से, वहिरङ्ग दृष्टि से बड़ा दिखायी देता है। अन्त में रावण की चोट सह करके विभीषण जी के मन में सच्ची ग्लानि और सच्चे पश्चात्ताप का उदय होता है। वह सोचते हैं कि मैं रावण को बदलने की चेष्टा करता हूँ; पर अपने को बदल नहीं पाया। तब उन्हें ईश्वर के गुणों की सच्ची याद आती है। वैसे इससे पूर्व भी उन्हें ईश्वर के गुणों की याद आती थी; किन्तु उस समय उन्हें रावण का गुण भी दिखायी देता था और अब रावण की भरी सभा में विभीषण घोषणा कर देते हैं —

"राम सत्य सङ्कल्प प्रभु,
सभा काल बस तोरि।
हौं रघुबीर शरण अब,
जाउँ देहु जनि खोरि ॥"

यहाँ पर जो 'राम सत्य सङ्कल्प' कहा है—उसमें भी एक रहस्य है। जीव का सङ्कल्प कब पूर्ण होता है ? जीव जब तक अपने सङ्कल्प के बल से अपना सङ्कल्प पूर्ण करना चाहेगा तब तक वह अधूरा ही रहेगा; पर जब वह अपने सङ्कल्प को सत्य सङ्कल्प ईश्वर से एकाकार कर देगा तो उसका सङ्कल्प पूर्ण हो जायगा। विभीषण यदि कहें कि मैं रावण को मारूँगा, तो वह बेचारा क्या मारेगा ? किन्तु विभीषण रावण से कहते हैं कि भगवान् राम तुम्हें मारने का निश्चय कर चुके हैं, ईश्वर सत्य सङ्कल्प हैं, इससे उनके सङ्कल्प में मेरा सङ्कल्प सम्मिलित है; अतः तुम्हारा विनाश अवश्यम्भावी है। अब परिणाम क्या होता है ? जीव दुर्विचारों का परित्याग कर देता है, रावण से नाता तोड़ लेता है और तब जाकर भगवान् की शरण में पहुँचता है। इसका अभिप्राय यह है कि उसके पाप की जो बाधा थी वह विनष्ट हो गयी। लङ्का की जो बाधा थी वह समाप्त हो चली। पाप की बाधा पार करने के पश्चात् साधक को एक दूसरी बाधा भी पार करनी पड़ती है। वह बाधा है पुण्य की बाधा। विभीषण के जीवन में भी कुछ क्षणों के लिए यह पुण्य की बाधा भी आयी; क्योंकि जब वह भगवान् के पास पहुँचे, तब भगवान् चारों ओर बन्दरों से घिरे थे। राक्षस दुर्गुण, दुर्विचार के प्रतीक हैं और बन्दर सद्गुण और सद्विचार के प्रतीक हैं। विभीषण ज्यों ही पहुँचे, बन्दरों ने उन्हें रोक कर पूछा— "कौन हो ?" विभीषण जी बोले—"रावण का भाई।" एक बन्दर ने सुग्रीव के कान में कहा —

"आवा मिलन दसानन भाई।"

—रावण का भाई आया हुआ है। उस समय ऐसा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लगा, मानों विभीषण को रोक दिया जायगा, उन्हें जाने नहीं दिया जायगा। आखिर रावण के भाई पर विश्वास भी कैसे किया जाय ? कहने का अभिप्राय यह है कि अगर साधक से यह प्रश्न किया जाय कि इतने दिनों तक तुम बुराई के साथी रहे अतः तुम भगवान् के पास पहुँचने के अधिकारी कैसे हो सकते हो ? इतने दिनों के पाप का फल तुम्हें क्या मिला ? बस इसी प्रश्न का उत्तर यहाँ बड़े विस्तार से दिया गया है। वन्दरों के द्वारा रोके जाने का तात्पर्य यही है कि एक बार पुण्य भी पाप के समान ही यद्यपि उतनी तीव्रता से न सही बाधक होता है। अब तक जो पाप किये हैं, जो भूलें हो चुकी हैं उनका क्या होगा ? यह प्रश्न साधक के सामने आता है। सुग्रीव ने यही कहा—"महाराज, यह रावण का भाई है इसे कैद कर लीजिए।" सुग्रीव के इस परामर्श पर भगवान् ने तुरन्त कहा—"नीति और धर्म की दृष्टि से तुम्हारा विचार ठीक है; किन्तु मेरी तो एक प्रतिज्ञा है —

> "सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
> जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

"जीव ने पहले जो भूलें की हैं, उनका हिसाब-किताब करना मेरा काम नहीं। वह जब भी मेरी सभा में आ जायगा, तभी से उसका पुराना खाता समाप्त हो जायगा और इस पुराने खाते की समाप्ति के बाद मेरी शरणागति का नया खाता खुलेगा।" श्री हनुमान्‌जी ने तुरन्त विभीषण को प्रभु की शरणागति की याद दिलायी और जीव ने पुकार कर स्पष्ट घोषणा करदी—'प्रभु, मैं अपना पुण्य, अपनी साधना लेकर के आपके पास नहीं आया हूँ' —

> "श्रवन सुजसु सुनि आयउँ, प्रभु भञ्जन भव भीर।
> त्राहि-त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुबीर॥"

—'मैंने अपने कानों से आपका सुयश सुना।' मानो हनुमान् जी की ओर उनका सङ्केत था कि 'महाराज ! मैं तो सो रहा था। क्या मैं कभी आ सकता था ? आपने सन्त को भेजा। उसने आपके गुण और यश का उल्लेख कर मेरे कानों में आपका सन्देश दिया कि हमसे चाहे जितनी भूलें हो चुकी हों, चाहे जितने पाप हो चुके हों, आप जीव को तत्काल शरणागति में स्वीकार कर लेते हैं। उस सन्देश को पाकर ही आपकी शरण में आने का मेरा साहस हुआ।' यह घोषणा सुनते ही भगवान् राम उठ करके विभीषण को हृदय से लगाते हैं। जीव और ब्रह्म का मिलन होता है और जीव को भगवान् राम लङ्केश बनाकर मानों स्पष्ट कर देते हैं कि 'लङ्का के वास्तविक स्वामी तुम हो। भ्रान्ति के कारण ही तुमने रावण का स्वामित्व स्वीकार किया हुआ है।' अन्त में जीव सचमुच में लङ्का का स्वामी बन जाता है।

इस तरह से गोस्वामी जी ने विभीषण के माध्यम से साधक के अन्तर्जीवन में आने वाली समस्याएं और उन समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रस्तुत किया है। ★★★

श्रीराम !

—श्री श्रीकृष्णचन्द्र शेंदरे 'हृदयेश', बी०ए०, एल-एल०बी०, एडवोकेट—

> शान्त, सनातन, अप्रमेय जो
> अनघ, मुक्ति-पद के जो दाता।
> ब्रह्मा, शम्भु, फणीन्द्र-सेव्य जो
> विभु, वेदान्तवेद्य, जग-त्राता॥
>
> जगदीश्वर, सुरगुरु, हरि हैं जो,
> माया से नर-रूप लखाता।
> करुणाकर, रघुवर, नृपालमणि,
> राम—उन्हें मैं शीश नवाता॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गताङ्क से आगे—

वेद में प्रेमयोग

—वेददर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर श्री स्वामी गंगेश्वरानन्द जी महाराज उदासीन

(८) प्रभु के प्रति भक्त का अतिशय प्रेम जाग्रत होने पर परम-प्रेम-स्वरूप भगवान् की सतत झाँकी भक्त के हृदयाकाश में होने लगती है —

नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचि-
न्मत्पादसेवाभिरता मदीहाः।
येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य,
सभाजयन्ते मम पौरुषाणि ॥
पश्यन्ति ते मे रुचिराण्यम्ब सन्तः,
प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ।
रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि
साकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति ॥
(भा० ३-२५-३४, ३५)

मेरी चरण-सेवा में प्रीति रखने वाले और मेरी ही प्रसन्नता के लिए समस्त कार्य करने वाले कितने ही बड़भागी भक्त, जो एक-दूसरे से मिलकर प्रेमपूर्वक मेरे ही पराक्रमों की चर्चा किया करते हैं, मेरे साथ एकीभाव (सायुज्य मोक्ष) की भी इच्छा नहीं करते ॥३४॥ मां ! वे साधुजन अरुण-नयन एवं मनोहर मुखारविन्द से युक्त मेरे परम सुन्दर और वरदायक दिव्य रूपों की झाँकी करते हैं और उनके साथ सप्रेम सम्भाषण भी करते हैं, जिसके लिए बड़े-बड़े तपस्वी भी लालायित रहते हैं ॥३५॥

अतिशय प्रेम के कारण भक्तों के लिए सतत भगवद्दर्शन ही आठवीं भूमिका है। इस भूमिका में भगवान् भक्तों की दृष्टि से कदापि ओझल नहीं होते। सच पूछा जाय, तो प्रेम की अपूर्व शक्ति से स्वामी सेवक वनकर भक्त की इच्छा का अनुसरण करने लगता है।

(९) तदुपरान्त श्रवण-कीर्त्तनादि भागवत-धर्मों में निष्ठा का उदय होता है। भक्ति की यही नवीं भूमिका है। हाँ, इतना ध्यान में रहे कि पहले भागवत-धर्मानुष्ठान को भक्ति की चौथी भूमिका कहा गया है। अतः यदि नवीं भूमिका भी भगवन्निष्ठा है, तो फिर दोनों में अन्तर ही क्या रहा ? दोनों में केवल अन्तर यह है कि चौथी भूमिका में भक्त को यत्नपूर्वक श्रवण-कीर्त्तनादि का अनुष्ठान करना पड़ता है, जबकि इस नवमी भूमिका में वे अनायास ही जीवन में आ जाते हैं। उसके लिए साधक को तनिक भी प्रयास नहीं करना पड़ता। अतः सायास-निष्ठा चतुर्थी और अनायास-सिद्धा नवमी भूमिका है। विष्णुपुराण में जड़भरत का जीवन इस निष्ठा का ज्वलन्त उदाहरण है। श्रीमद्भागवत (९-४-१५ से २७ तक) में भी राजा अम्बरीष के जीवन में इस भूमिका का सविस्तर वर्णन किया गया है। राजा अम्बरीष सदैव भागवत-धर्म श्रवण-कीर्त्तनादि में लीन रहते थे। संसार के समस्त पदार्थ उनकी दृष्टि में स्वप्नवत् मिथ्या थे। अतुल वैभव प्राप्त होने पर भी उनका हृदय अभिमान-शून्य था; जबकि सामान्य वैभव-सम्पन्न होते ही लोगों का मन बिगड़ जाता है। पर वे सदैव भगवान् और भगवद्भक्त सन्तों की सेवा में संलग्न रहते थे। सारा विश्व उनकी दृष्टि में लोष्ठवत् (मिट्टी के ढेले बराबर) था। ऐसा स्वाभाविक भागवत-धर्मानुष्ठान ही भक्ति की नवमी भूमिका है।

(१०) भक्तों में भगवत्तुल्य अणिमादि सिद्धियों का आविर्भाव ही भक्ति की दशमी भूमिका है —

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथो विभूतिं मम मायाविनस्तामैश्वर्य-
मष्टाङ्गमनुप्रवृत्तम् ।
श्रियं भागवतीं वा स्पृहयन्ति भद्रां परस्य
मे तेऽश्नुवते तु लोके ॥
(भा० ३-२५-३७)

अविद्या की निवृत्ति हो जाने पर यद्यपि वे मुझ मायापति के सत्यादि लोकों की भोग-सम्पत्ति, भक्ति की प्रवृत्ति के पश्चात् स्वयं प्राप्त होने वाली अष्ट-सिद्धि अथवा वैकुण्ठ लोक के भागवदीय ऐश्वर्य की भी इच्छा नहीं करते, तथापि मेरे धाम में पहुँचने पर उन्हें ये सब विभूतियां स्वयं ही प्राप्त हो जाती हैं ॥३७॥

(११) **'प्रेम्णोऽथ परमा काष्ठा'**—तदनन्तर प्रेम की चरम सीमा भक्ति की एकादशी भूमिका है। भक्त का प्रेम प्रभु के प्रति इतना अधिक प्रवृद्ध होता है कि अब उनकी अनुपस्थिति में वह जी ही नहीं सकता। विरहाग्नि में जलकर उसका हृदय भस्म होने लगता है। उसमें विरह-सहन का सामर्थ्य नहीं रह जाता। विरह-व्याकुलता की अधिकता से उसके शरीर से प्राण-पखेरू सदा के लिए उड़ जाने को प्रस्तुत हो जाते हैं और कभी-कभी तो उड़ भी जाते हैं। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्द के उन्तीसवें अध्याय की एक कथा है कि भगवान् की मुरली-माधुरी सुनकर गोपिकाएँ गृह-कार्यों को अधूरा छोड़कर बन्धु-वर्ग की इच्छा के प्रतिकूल व्रजनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों में चली जाती हैं; पर कुछ गोपिकाएँ बन्धु-वर्ग के कठोर प्रतिवन्ध के कारण द्वार बन्द कर देने पर भी अपने प्रेमातिशय के कारण शरीर का परित्याग कर प्रियतम के पास पहुँच गयीं। उन गोपिकाओं का प्रेम चरम सीमा पर पहुँच चुका था। उन्हें अब कोई शक्ति रोक नहीं सकती थी। अतः भगवद्दर्शन न होने के कारण प्राणों का परित्याग कर देना ही भक्ति की एकादशी भूमिका है।

भक्ति की ये एकादश भूमिकाएँ श्री मधुसूदन सरस्वती के मतानुसार यहाँ वर्णित की गयी हैं। इन भूमिकाओं में सात साधन-स्वरूपा और चार साध्य-स्वरूपा हैं। श्रीमद्भागवत में **'भक्त्या सञ्जातया भक्त्या'** (११-३-३१) की उक्ति से भक्ति के साधन और साध्य दो स्वरूप दिखायी पड़ते हैं। **'भजनं भक्तिः'** इस भाव-साधन व्युत्पत्ति सें चित्त की भगवदाकार मनोवृत्ति-रूप भगवद्रति फल-भक्ति निर्दिष्ट हुई है और प्रथम भक्ति-पद **'भज्यते अनया'** जिससे चित्त को भगवदाकार किया जा सके, इस करण-साधन व्युत्पत्ति से श्रवण-कीर्त्तनादि भागवत-धर्मों का वाचक है। इसी को साधन-भक्ति कहते हैं।

भागवत में इस प्रसङ्ग के उपसंहार में कहा गया है —

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया ।
नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम् ॥
(भा० ११-३-३३)

जो इस प्रकार भागवत-धर्मों की शिक्षा ग्रहण करता है, उसे उनके द्वारा प्रेम-भक्ति की प्राप्ति हो जाती है और वह भगवान् नारायण के परायण होकर उस माया को अनायास ही पार कर जाता है—जिसके पञ्जे से निकलना बहुत ही कठिन है।

इस श्लोक में प्रथम भक्ति-पद के स्थान में स्पष्ट भागवत-धर्मों का ही निर्देश किया गया है।

अब आप भलीभाँति समझ सकते हैं कि साधन-भूमिकाएँ हस्त-स्थानीय हैं एवं अन्तिम फल-भूमिकाएँ प्रेमयोग-रूपी वृषभ के चार सींग

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं। शरीर में सींग सब अङ्गों के ऊपर होते हैं। फल-भूमिकाएं भी अन्य भूमिकाओं की दृष्टि से सबसे ऊँची होती हैं। इसी समानता के कारण चारों फल-भूमिकाओं को प्रेमयोग-रूपी वृषभ के चार सींग कहा गया है।

देहादि अनात्म वस्तुओं में आत्मबुद्धि को अहंभाव कहते हैं। इसी को अहन्ता या तादात्म्याध्यास भी कहते हैं। पुत्रादिक बाह्य व्यक्तियों या वस्तुओं में सम्बन्ध-बुद्धि रखना मम-भाव या ममता है। इसी का नाम संसर्गाध्यास भी है। अहन्ता और ममता इन दोनों का त्याग ही प्रेमयोग वृषभ के दो मस्तक हैं।

श्री बलदेव जी के अभियोग लगाने पर माता यशोदा बाल-कृष्ण को बाँध रही है। व्रज की सारी रज्जुएँ और साँकलें काम में लायी गयीं, फिर भी श्रीकृष्ण जी बाँधे नहीं जा सके। दो अंगुल की कमी पूरी नहीं हो पाती। अन्त में यशोदा जी को निश्चय हुआ कि न तो श्रीकृष्ण मेरे पुत्र हैं और न मैं उनकी माता। यशोदा के यह सोचते ही भगवान् श्रीकृष्ण तत्काल बन्धन में आ गये। इस कथा से यह तात्पर्य निकलता है कि भगवान् को बाँधने की डोरी 'प्रेम' है। यशोदा कृष्ण को बाँध रही थी तो दो अंगुल की कमी इसलिए रह जाती थी कि उसके हृदय में अहन्ता-ममता थी। उसका प्रेम अपूर्ण था। इस अहन्ता-ममता को त्यागते ही वह दो अंगुल की कमी भी समाप्त हो गयी और कृष्ण तत्काल बन्धन में आ गये; क्योंकि उससे प्रेम पूर्ण हो गया। अहन्ता-ममता-त्याग के बिना प्रेम अपूर्ण रहता। इसीलिए इनके त्याग को प्रेमयोग वृषभ के दो मस्तक कहा गया है।

प्रेमयोग के तीन पाद हैं। अंश या विभाग को पाद कहते हैं, जैसे रुपये के चार पाद चार चवन्नियाँ हैं। प्रेमयोग को भी तीन विभागों में बाँटा गया है; यथा—दृष्टार्थ, अदृष्टार्थ, दृष्टादृष्टार्थ प्रेम। जिसका फल वर्त्तमान शरीर से ही अनुभव किया जाता है, उसे दृष्टार्थ या दृष्टफल कहते हैं; जैसे भोजन, जलपान आदि। उसका फल क्षुधा-निवृत्ति या तृषा-निवृत्ति इसी शरीर से अनुभूत है। जन्मान्तरीय शरीर द्वारा अगले जन्म में जिस फल का अनुभव हो सके, उसे अदृष्टार्थ कहते हैं; जैसे यज्ञ आदि। यज्ञ का फल भावी जन्म में शरीरान्तर द्वारा ही उपभोग्य है। जिसमें दोनों प्रकार के फल होते हैं उसे दृष्टादृष्टार्थ कहते हैं; जैसे गङ्गा-स्नानादि।

ग्रीष्म ऋतु में उष्णता के कारण किसी व्यक्ति का शरीर सन्तप्त और व्याकुल हो गया हो, गङ्गा में गोता लगाते ही सन्ताप-मुक्त होकर उसे अद्भुत शीतलता का आनन्दानुभव होता है। यह सुखद आनन्द दृष्ट-फल है। शास्त्रों में गङ्गा-स्नान का फल स्वर्ग-प्राप्ति बताया गया है। गङ्गा-स्नान करने वाला जब वर्त्तमान शरीर त्यागकर स्वर्ग में देव-शरीर धारण करेगा तब उस देव-शरीर द्वारा उपभोग्य दिव्यानन्द अदृष्ट-फल है। इस प्रकार ऐहिक एवं पारलौकिक आनन्दप्रद गङ्गा-स्नान को दृष्टादृष्टार्थ मानना पड़ेगा।

(क्रमशः)

जीवन की काली घटाओं के बीच प्रेम इन्द्रधनुष है। वह प्रातः और सायंकाल का तारा है। वह शिशु के पालने पर चमकता है और नीरव कब्र पर अपना प्रकाश फैलाता है। वह कला की जननी है, कवि की प्रेरणा है, देशभक्त और दार्शनिक की स्फूर्ति है।

— संगरसोल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिन्दुत्व

—डा० स्वर्णलता अग्रवाल, एम० ए०, पी-एच० डी०, भूतपूर्व प्रिंसिपल—

देश-विदेशों के विभिन्न धर्मावलम्बी चिन्तकों के लिए हिन्दू-धर्म सदा से आकर्षण का केन्द्र बना रहा है। शतशः-सहस्रशः विदेशी योगी हिन्दू-धर्मावलम्बी सन्त-महात्माओं, द्रष्टाओं तथा साधकों के सान्निध्य में योग-साधना करने में शान्ति अनुभव कर रहे हैं। क्यों ? किसी भौतिक आकर्षण अथवा आर्थिक प्रलोभन से नहीं। हिन्दू-धर्म के प्रणेताओं ने कभी किसी विधर्मी को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया हो, ऐसी घटना विश्व के इतिहास में दृष्टिगत नहीं होती; किन्तु फिर भी आध्यात्मिक वृत्ति का जन-मानस हिन्दू-दर्शन, हिन्दू-योग एवं हिन्दू-धर्म की साधना के सम्पर्क में आने पर शान्ति का अनुभव करता है; ऐसे अनेकों दृष्टान्त सम-सामयिक पत्र-पत्रिकाओं एवं आध्यात्मिक साहित्य में मिलते हैं।

कारण की खोज करने पर विदित होता है कि हिन्दुत्व के विधि-विधान मानव-जाति के एक सीमित मण्डल मात्र के लिए ग्राह्य नहीं वरञ्च इसमें जीवन का समग्र रूप लिया गया है जो प्राणिमात्र के लिए घटित हो। किसी भी देश, काल व जाति का जन-समूह हिन्दू-धर्म व जाति के सिद्धान्तों से लाभान्वित होकर कल्याण का भागी बन सकता है।

हिन्दुत्व की विशिष्टताएं हैं—व्यापक सहिष्णुता, गम्भीर मानवता और उच्च आध्यात्मिक लक्ष्य। इन्हीं गुणों के बल पर विश्व के महान् धर्मों के आक्रमणों को सहन करके भी हिन्दुत्व जीवित है और रहता भी क्यों न ? आध्यात्मिक सत्यों की ठोस चट्टान-रूप पृष्ठभूमि पर इसकी नींव जो पड़ी है। हिन्दू-जीवन का पूर्ण ढाँचा ऋषियों द्वारा अनुभूत शाश्वत सत्यों के आधार पर बना है। किसी भी धर्म में इतने असंख्य सन्त, महात्मा, योगी, ऋषि-महर्षि, आचार्य्य, वीर सेनानी, कवि और राजनैतिक नेता नहीं हुए हैं जितने हिन्दू-धर्म में।* यही हिन्दू-धर्म की दृढ़ भित्ति और महिमा का प्रमाण है।

हिन्दू-धर्म के लक्षण हैं :—

"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥"

—अर्थात् धैर्य, क्षमा, दम, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रिय-संयम, बुद्धिमत्ता, विद्या, सत्य और क्रोध न करना—ये धर्म के दस लक्षण हैं।

इन गुणों का अनुपालन मानव मात्र के लिए कल्याणकारक है चाहे किसी भी जाति, धर्म, देश अथवा काल का हो। यही हिन्दू-धर्म की महिमा है। हिन्दुत्व के सिद्धान्त सङ्कीर्णता के विधायक अथवा सीमा में बाँधने वाले नहीं हैं। इसी कारण वे विश्व के व्यापक जन-मानस द्वारा ग्राह्य एवं अनुपालनीय बने हुए हैं।

धर्म की विभिन्न परिभाषाएं, जो हिन्दू-शास्त्रों में दी हुई हैं, इस प्रकार हैं :—

मनु ने किन्हीं विशेष प्रकार के नैतिक नियमों के पालन तथा कुछ सामाजिक व्यवस्थाओं के अनुसरण को धर्म कहा है।

मीमांसक विविध प्रवृत्तियों पर उचित अर्गला देने वाले तत्त्वों को धर्म मानते हैं। इस प्रकार

* स्वामी शिवानन्द

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धर्म मनुष्य को मर्यादा में बाँधकर अनुशासित जीवन यापन की प्रेरणा देता है!

महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में लिखा है—"समाज की व्यवस्था करने वाले समस्त तत्त्वों को धर्म कहा जाता है।"

इसी प्रकार कणाद ऋषि ने धर्म को लौकिक और पारलौकिक समृद्धि एवं शान्ति का विधान करने वाला बताया है।

प्रत्येक युग की परिस्थितियों के अनुरूप धर्म की मान्यताएं बदलती रहीं और धर्म के नियमों का क्रम आगे बढ़ता जा रहा है।

महात्मा गाँधी ने मानव-धर्म की इन समस्त परिभाषाओं का निचोड़ 'सत्य और अहिंसा' में बाँध दिया, जिसमें धर्म के सारे तत्त्व निहित हैं। उनके अनुसार धर्म के ये लक्षण हिन्दू-धर्म का सार होते हुए भी विश्व के समस्त धर्मों के आधार-स्तम्भ कहे जा सकते हैं। उनके लिए एकादश व्रत-साधना ही धर्म है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह,
शरीरश्रम, अस्वाद, सर्वत्र भय वर्जन।।
सर्वधर्मसमानत्वं, स्वदेशी, स्पर्श भावना,
विनम्र व्रत निष्ठा से ये एकादश सेव्य हैं।।

विश्व के सभी बड़े-बड़े सुव्यवस्थित धर्मों ने यह माना है कि केवल इन्द्रिय-जनित सुखों से मानवात्मा तृप्त नहीं होती। मनुष्य-मात्र की स्वाभाविक इच्छा होती है कि वह मन की उच्च भूमि में उठे। उस अलौकिक स्थिति में मानव-मन विशिष्ट क्षणों में ही पहुँचता है। इन्द्रियों की सीमा से ऊपर उठ कर वह उन सत्यों का दर्शन कर लेता है, जिनपर बुद्धि से विचार नहीं हो सकता।† इन्हीं मन की अलौकिक स्थिति के क्षणों में कलाकार कला का सर्जन करता है, कवि और साहित्यकार काव्य की रचना करता है एवं वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में नये-नये अनुसन्धान करने में सक्षम होता है।

इस प्रकार की मनोस्थिति का सम्यक् विश्लेषण और उसे प्राप्त करने हेतु साधना—इन्द्रिय-संयम, तपश्चर्य्या और चित्त की एकाग्रता का अभ्यास—हिन्दू-ऋषियों, द्रष्टाओं तथा क्रान्तिदर्शी दार्शनिकों ने सर्वाधिक किया है। वस्तुतः वाह्य जगत् पर, वाह्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करना अपेक्षाकृत कहीं सरल है; किन्तु मानव की अन्तः प्रकृति के रहस्यों को समझना, मनुष्य की वासनाओं, भावनाओं और इच्छा-शक्ति के सूक्ष्म तथ्यों पर विजय पाना और उनके प्रशासक विधि-विधानों को समझ कर नियन्त्रण करना अति कठिन है।$ यही सब हिन्दू-धर्म से सम्बन्धित क्रियाएं हैं जिनके अनुपालन से मानव सच्चे सुख और शान्ति का अधिकारी बन सकता है।

ऋषियों और द्रष्टाओं द्वारा अनुभूत सत्यों के आधार पर हिन्दू-धर्म के सर्वाधिक मान्य अङ्ग वेदान्त ने जीव और ईश्वर की एकता (अद्वैत) प्रतिपादित करके योगाभ्यास द्वारा मानव-आत्मा का परम आत्मा (सृष्टिकर्त्ता ईश्वर) से योग स्थापित करने में ही परम शान्ति एवं आनन्द की स्थिति बतायी है।

इस स्थिति को प्राप्त करने के आठ स्तर बताकर अष्टाङ्ग योग संज्ञा से अभिहित किया है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि साँसारिक जीवन को तिलाञ्जलि देकर ही ये साधनाएं की जा सकती हैं।

व्यावहारिक जीवन में ही यम-नियमों द्वारा चित्त की शुद्धि और जीवन की पवित्रता प्राप्त

---

†, $ स्वामी विवेकानन्द, : *Necessity of Religion.*

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर के मनुष्य इन्द्रिय-संयम द्वारा विवेक बुद्धि से कर्म करता हुआ चित्त की एकाग्रता हेतु धारणा, ध्यान तथा समाधि के अभ्यास से सांसारिक जीवन में शान्ति प्राप्त करने के साथ-साथ मानव-जीवन के परम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति में सफल हो सकता है।

हिन्दुत्व की यह महिमा, व्यवहारशीलता एवं सत्-चित्-आनन्द प्राप्त कराने की क्षमता अनायास ही सुसंस्कृत मानव-हृदय को आकर्षित कर लेती है। हिन्दू-धर्म में अनेक विचारधाराओं के फलस्वरूप विभिन्न सम्प्रदायों का बनना भी धर्म की महिमा का द्योतक है।* हिन्दुत्व इतना विशाल और उदार है कि मानव सुलभ विविध चिन्तनशैलियों से धर्म की साधना के अनेक रूप प्रकट हो गये। मानव-मन की गहराइयों की थाह पाना सरल नहीं। मानव जीवन और जगत् के विषय में जितना चिन्तन करता है उतने ही विभिन्न विचार प्रकाश में आते हैं--विभिन्न तथ्यों का उद्घाटन होता है। चिन्तन करने का दृष्टिकोण प्रत्येक मनुष्य का भिन्न-भिन्न हुआ करता है। इस प्रकार धर्म के सम्बन्ध में जितना ही अधिक दार्शनिकों ने चिन्तन किया उतने ही साधना के रूप बनते गये; परन्तु धर्म के मूलभूत सिद्धान्त सभी रूपों के समान हैं—ज्ञेय तत्त्व एक है।

धार्मिक कट्टरता ने पारस्परिक द्वेष-भाव उत्पन्न करके सम्प्रदायों का रूप दे दिया। वास्तव में मत वैविध्य कोई हानिप्रद बात नहीं। सभी प्रकार के धार्मिक विचारों का सामञ्जस्य स्थापित करके राष्ट्रीय धर्म और विश्व-धर्म की स्थापना के आधुनिक सन्तों के प्रयत्न राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य के द्योतक हैं। ★★★

गताङ्क से आगे—

जीव - यात्रा—आत्मस्वरूप

—श्री पी० वी० सुब्बय्या, एम०ए०, बी० एड०

'जीव-यात्रा' शीर्षक के अन्तर्गत अब तक हमने जीव की यात्रा के साधनों के विषय में यथावश्यक जानकारी प्राप्त कर ली है। हमने देखा कि देह रथ है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, मन बागडोर है तथा बुद्धि सारथि है। इन उपाधियों के स्वरूप तथा उन्हें अपने अधीन कर लेने के उपायों के विषय में भी हम सब विचार कर चुके हैं। ये सब उपाधियाँ अनात्म हैं। अब प्रश्न होता है कि आत्मा कौन है जो इस रथ पर बैठकर यात्रा कर रहा है? यहाँ हम उसके विषय में ही चिन्तन करेंगे।

संसार में यह एक बड़ी ही विचित्र बात है कि मनुष्य प्रायः सभी विषयों से अवगत हैं; परन्तु अपने स्वरूप के विषय में वह सर्वथा अनभिज्ञ है। अमेरिका की स्थिति कैसी है? लन्दन की स्थिति कैसी है? आदि-आदि बातें वह जानता है; पर अपनी वास्तविक स्थिति को वह नहीं जानता और इस दिशा में जानकारी प्राप्त करने की इच्छा भी बहुत कम ही लोग रखते हैं। आँख को कोई नयी वस्तु दीखी नहीं कि वह उसके विषय में जानने को व्यग्र हो उठता है; पर आत्मा के सम्बन्ध में, अपने सम्बन्ध

* स्वामी शिवानन्द — *All about Hinduism.*

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में जानने की चेष्टा नहीं करता। यदि मनुष्य को यह ज्ञात नहीं कि वह कौन है और उसका स्वरूप क्या है तो वह अपने जीवन के गन्तव्य स्थान का पथिक नहीं बन सकता। ऐसे व्यक्ति का जीवन अन्धे बैल के समान तथा पागल कुत्ते के समान इस संसार में दयनीय ही है।

किसी पथिक से यदि यह प्रश्न करें कि भाई! आप कौन हैं और कहाँ जा रहे हैं और यदि वह इसका उत्तर न दे पाये तो लोग उसे पागल ही समझेंगे और उसे देखकर हँसेंगे। इसी भाँति मनुष्य जब अपने स्वरूप तथा जीवन के लक्ष्य के बारे में अनभिज्ञ रहता है तो उसे उस पागल के समान ही मानना चाहिए। समाज में तथाकथित उन्नत कोटि के व्यक्ति भी अधिकांशतः इस प्रकार के पागलों की श्रेणी में दीखते हैं। यदि हमें अपने को उन पागलों की श्रेणी में नहीं मिलाना है तो अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेना हमारा प्राथमिक कर्त्तव्य है। इसके लिए अन्तर्मुखी हो विचार करना चाहिए कि 'मैं कौन हूँ?' इस 'मैं' को जानने के लिए गम्भीरतापूर्वक सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। सत्सङ्ग में जाकर तत्परता के साथ श्रवण करते रहना चाहिए। सज्जनों की सङ्गति इसके लिए एक अचूक साधन है। सद्ग्रन्थों का अध्ययन भी नियमपूर्वक करते रहना चाहिए। प्रतिदिन श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करना नितान्त आवश्यक है। आइए, अब हम देखें कि यह स्वरूप-ज्ञान क्या है, जिसकी शास्त्रों ने इतनी महिमा गायी है कि इसको जान लेने पर संसार में अन्य कुछ ज्ञातव्य शेष नहीं रह जाता।

छान्दोग्योपनिषद् में एक आख्यान है कि श्वेतकेतु नामक ऋषि-पुत्र ने अपने पिता उद्दालक के भेजने पर बारह वर्ष तक गुरु के पास रहकर विद्यार्जन किया। अध्ययन समाप्त होने पर जब वह अपने पिता के पास वापस आया तो पिताजी ने उससे प्रश्न किया कि तुम क्या-क्या जानते हो? श्वेतकेतु ने बड़े अहङ्कार से उत्तर दिया कि मैं सभी विद्याओं को जानता हूँ। तब उसके पिताजी ने फिर प्रश्न किया कि जिस एक विद्या को जानने से सब का ज्ञान हो जाता है क्या तुम उसे जानते हो? इस प्रश्न को सुनते ही श्वेतकेतु का अभिमान विदीर्ण हो गया। उसने कहा—"पिताजी! इस तरह के ज्ञान का नाम तक मैंने नहीं सुना।" पुत्र को समझाते हुए पिताजी ने आत्मविद्या का ज्ञान दिया, जिसे जानकर श्वेतकेतु ने परम शान्ति का अनुभव किया। अतः यह सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है। यदि इस एक को छोड़कर अन्य सारी विद्याएं सीखीं तो उनसे कोई लाभ नहीं।

सृष्टि में दृष्टिगत होने वाली वस्तुएँ अनन्त हैं, उनकी कोई गणना नहीं; परन्तु उनके आधार रूप में रहने वाला चैतन्य तत्त्व या आत्मा एक ही है। जितने भी नाम और रूप हैं वे सब आधेय हैं तथा आत्मा के आश्रय में विद्यमान या प्रकाशमान हैं। हमारा सारा व्यवहार भी इन नाम और रूपों को सत्य मानकर चलता है; क्योंकि आत्मा का द्योतन ही प्रापञ्चिक लोगों को नहीं होता। ऐसा क्यों? हमारे पास किसी वस्तु के अस्तित्व को पहचानने के लिए पाँच इन्द्रियों के रूप में पाँच करण हैं। वे पाँच विषयों को अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध को पहचानते हैं। ये विषय पञ्च तन्मात्राएं या पाँच गुण भी कहे जाते हैं। आकाश का गुण शब्द है। हम पहले देख चुके हैं कि वायु आकाश से उत्पन्न हुआ है। अतः वायु में आकाश का गुण शब्द और अपना गुण स्पर्श दो गुण होते हैं। अग्नि में अपना गुण रूप और अपने पूर्ववर्ती तत्त्वों के दो गुण पाये जाते हैं। इस भाँति उसमें कुल तीन गुण होते हैं। जल का गुण रस है; पर उसमें कुल मिला कर चार गुण होते हैं। इसी तरह पृथ्वी में अपने गुण गन्ध के साथ कुल पाँच गुण विद्यमान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं। जो भूत जितना ही अधिक स्थूल होता है उसमें उतने ही अधिक गुण पाये जाते हैं। भूमि सर्वाधिक स्थूल भूत है; अतः उसमें पाँच गुण होते हैं।

इसको समझने के लिए एक उदाहरण लेंगे। एक मेज पर हाथ से मारिए तो उसमें शब्द होगा। यह आकाश का गुण है। स्पर्श से वह कठिन प्रतीत होता है, अतः वह वायु का गुण है। जीभ को लगायें तो उसका अपना स्वाद होता है। यह जल का गुण है। नाक से सूँघने पर उसकी गन्ध का अनुभव होता है। इस तरह भूमि का अंश होने के नाते मेज में पाँच गुण उपलब्ध हैं।

जैसे स्थूल भूतों में गुणों की अधिकता होती है वैसे ही सूक्ष्म भूतों में गुणों की कमी होती है। उदाहरण के लिए जल पृथ्वी से सूक्ष्म होता है। अतः उसमें चार ही गुण होते हैं, जबकि पृथ्वी में पाँच गुण पाये जाते हैं। अग्नि जल से भी सूक्ष्म होने के कारण उसके तीन ही गुण होते हैं। इसी भाँति आरोहण-क्रम से आकाश तत्त्व तक गये तो उसका शब्द ही एकमात्र गुण है। एक गुण वाला होने के कारण वह अन्य सभी भूतों की अपेक्षा अति सूक्ष्म है। सूक्ष्मतम होने के कारण उसका विस्तार भी सर्वापेक्षा अधिक होता है। आकाश से भी ऊपर गये तो सभी गुण समाप्त हो गये। आत्मा निर्गुण है और उसका विस्तार भी अनन्त है। निर्गुण तत्त्व के अस्तित्व को जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। इसी कारण भगवान् के अस्तित्व में लोग प्रायः सन्देह करते हैं। इस रहस्य के अवगत हो जाने पर हम में भगवान् के अस्तित्व के प्रति प्रगाढ़ विश्वास उत्पन्न होता है और कहना न होगा कि यह दृढ़ विश्वास ही मानव-जीवन की सफलता की कुञ्जी है।

(क्रमशः)

गत दिसम्बर अङ्क से आगे—

बौद्ध तान्त्रिक योग

डा० श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द', एम०ए० (संस्कृत,हिन्दी), बी०एड्०, व्याकरणाचार्य, पी-एच०डी०

युगनद्ध-सिद्धान्त—शाक्त तान्त्रिकों की शिव-शक्ति-सामरस्यावस्था का प्रतीक ही बौद्ध 'युगनद्धावस्था' है। 'प्रज्ञा' (स्त्री) एवं 'उपाय' (पुरुष) की सङ्घट्टावस्था ही 'युगनद्धावस्था' है। यही 'बुद्धत्व' एवं 'वज्रावस्था' है। 'शून्यता' स्त्री है और इसकी 'अभिव्यक्ति' पुरुष है। इन दोनों की एकता ही 'युगनद्धता' है।

महासुखवाद—औपनिषदिक साधना निवृत्ति-मार्ग का पोषण करती हुई मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्कार पर पूर्ण नियन्त्रण एवं रागात्मिका वृत्तियों के पूर्ण शमन का प्रतिपादन करती है; लेकिन तान्त्रिक साधना ऐन्द्रिय वासनाओं की परितृप्ति के माध्यम से ही मोक्षाधिगम का प्रतिपादन करती है। वज्रयान में मुक्तावस्था का अभिधान 'महासुख' दिया गया है। तन्त्रों में 'योनि' को 'सुखावती' नामक 'स्वर्ग' कहा गया है और 'वीर्य' को 'आनन्द' कहा गया है और 'सुखावती' में युगनद्ध होकर सम्भोग करने में आनन्द प्राप्ति ही 'महासुख' कहलाता है। 'मुद्रा' (स्त्री) के साथ युगनद्ध होकर सम्भोग-क्रिया करने में प्राप्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आनन्द ही 'महासुख' है।

सामरस्य-सिद्धान्त—'प्रज्ञा' (स्त्री) एवं 'उपाय' (पुरुष) (शक्ति एवं शिव) की एकता ही सामरस्य कहलाता है। जल में लवण के समान मन के स्त्री (शून्यता) में निमग्न हो जाने की स्थिति ही सामरस्य की स्थिति कहलाती है। प्रज्ञा एवं उपाय, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति की पूर्ण एकता ही सामरस्य कहलाता है। जीवन में एक ही रस की अनवरत अद्वैत-अनुभूति सामरस्य है।

अभिसम्बोधि-सिद्धान्त — अभिसम्बोधि=पूर्ण-प्रकाश। 'अभिसम्बोधि' सृष्टि-विज्ञान एवं काया-सिद्धान्त से सम्बद्ध है। उदाहरणार्थ —

(१) एकक्षणाभि-सम्बोधि—सहज काया।
(२) पञ्चकार-सम्बोधि—धर्म काया।
(३) विंशत्याकार-सम्बोधि—सम्भोग काया।
(४) मायाजालाभि-सम्बोधि—निर्माण काया।

प्रथम—'समयसत्त्व'; द्वितीय—'बोधिसत्त्व'; तृतीय—'महासत्त्व'; चतुर्थ—'वज्रसत्त्व' प्रकाश का क्रम यही है।

प्रतिपत्ति-सिद्धान्त—अभिसम्बोधि का सिद्धान्त जहाँ 'उत्पत्तिक्रम' पर प्रकाश डालता है, वहीं 'उत्पन्नक्रम' पूर्णता-प्राप्ति पर प्रकाश डालता है। 'उत्पन्नक्रम' में तुरीय ध्यान-प्रक्रिया का वर्णन है और इसे ही 'प्रतिपत्ति' कहते हैं। इसमें (१) उपसंज्ञा, (२) वेदना, (३) संस्कार, (४) विज्ञान, (५) ज्ञान, (६) लक्षण, (७) दस सृष्टि-सम्बन्धी-निमित्त, (८) पञ्च-भूत, (९) आयतन, (१०) धर्म-धातु आदि पर ध्यान किया जाता है।

शक्ति-योग—तान्त्रिक साधना में 'लता-साधन' को भी स्वीकार किया गया है। हठयोग की साधना के द्वारा चित्त को शुद्ध करके एवं सर्व प्रकार की शुद्धियाँ प्राप्त करके द्वादश वर्षीया कन्या के साथ एकान्त में निवास करता हुआ साधक विष्ठा, मूत्रादिक का मण्डल बनाकर एवं उस मण्डल के मध्य में समासीन होकर अपने क्रोड़ में उस कन्या को बैठाकर साधना करना शक्ति-योग की साधना या 'विद्या-पौरुष' कहलाता है। 'विद्या', 'स्त्री', 'प्रज्ञा' एवं 'शक्ति' सभी पर्याय हैं। शक्ति के योग के साथ की जाने वाली साधना शक्ति-योग कहलाती है। प्रज्ञा एवं उपाय या शून्यता तथा करुणा की एकता ही 'योग' है; यही युगनद्धावस्था है, यही सामरस्य है और यही शक्ति-योग है।

पञ्चभूत-जय-साधना—तान्त्रिक प्रक्रिया के अनुसार क्षिति, जल, पावक, गगन तथा समीर—पञ्च-तत्त्व 'प्रज्ञा' (स्त्री) हैं। पञ्च-स्कन्ध—रूपस्कन्ध, वेदनास्कन्ध, संज्ञास्कन्ध, संस्कारस्कन्ध, विज्ञान-स्कन्ध—'उपाय' (पुरुष) कहलाता है। 'प्रज्ञा' एवं 'उपाय' की एकता का, शक्ति-समन्वित ध्यानी बुद्धों के रूप में, ध्यान करने से पञ्च-भूतों पर विजय प्राप्त होती है।

सहज-यान—

सहज-साधना—'सहज' प्रज्ञाज्ञान को कहते हैं। 'अद्वय वज्र-संग्रह' में कहा गया है कि 'सभी धर्मों का अकृत्रिम लक्षण' ही 'सहज' है। अतः भावाभाव से परे शुद्ध अकृत्रिम परज्ञान ही 'सहज' है।

मानव-मन की स्वाभाविक या सहज प्रवृत्ति विषयों की ओर होती है; अतः मन को उसके स्वाभाविक सहज मार्ग में चलने देने की स्वतन्त्रता देकर भोग के द्वारा योग को प्राप्त करना सहज-साधना है। सभी तन्त्र सहजयानी हैं चाहे वे बौद्ध तन्त्र हों या शैव-शाक्त। 'प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि' नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि —

"तथा तथा प्रवर्तेत यथा न क्षुभ्यते मनः।
संक्षुब्धे चित्तरत्ने तु सिद्धिर्नैव कदाचन॥"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

—अर्थात् मन जिस मार्ग की ओर अग्रसर हो उसे उसी ओर अग्रसर होने देना चाहिए; जिससे कि मन संक्षुब्ध न हो; क्योंकि चित्तरत्न के संक्षुब्ध हो जाने पर कभी भी सिद्धि नहीं प्राप्त की जा सकती।

मन की सहज गति का अनुसरण करते हुए, सभी भोगों का उपभोग करते हुए, सहज स्वाभाविक मन-मार्ग से योग की साधना करना ही **सहज योग की साधना है।**

आदि बुद्ध एवं पञ्चध्यानी बुद्ध—सर्वातीत, निःस्वभाव, शून्य, सर्वव्याक, अद्वैत, परम सत्ता ही 'आदि बुद्ध' है। इसी आदि बुद्ध से पञ्चध्यानी बुद्धों का आविर्भाव होता है। 'आदि बुद्ध' सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, निष्कल, निरामय, सर्वातीत वह सत्ता है जिसमें 'शून्यता' एवं 'करुणा' की अद्वैतता निहित रहती है। 'आदि बुद्ध' ही अनेकों लोकों में अनेकों रूपों में विद्यमान हैं।

पञ्चध्यानी बुद्ध पञ्चस्कन्धों के अधिष्ठाता हैं:—

पञ्चध्यानी बुद्ध —

(१)	रूपस्कन्ध के अधिष्ठाता ध्यानी बुद्ध	=	'वैरोचन'
(२)	वेदनास्कन्ध ,, ,,	=	'रत्नसम्भव'
(३)	संज्ञास्कन्ध ,, ,,	=	'अमिताभ'
(४)	संस्कारस्कन्ध ,, ,,	=	'अमोघसिद्धि'
(५)	विज्ञानस्कन्ध ,, ,,	=	'अक्षोभ्य'

कालचक्र-यान—

अनादि, अद्वैत, सर्वातीत, निष्कल, निरञ्जन, परम सत्ता 'आदि बुद्ध' को ही 'काल' भी कहा जाता है। उनकी संवितरूपिणी शक्ति ही 'चक्र' कहलाती है अतः उसे 'कालचक्र' कहा जाता है। 'कालचक्र-यान' महायान का एक उपसम्प्रदाय है। यह **'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे'** के सिद्धान्त को मानकर 'कायायोग' पर विशेष बल देता था। यह 'कायाशुद्धि' को प्राणशुद्धि एवं चित्तशुद्धि से भी अधिक महत्त्वपूर्ण मानता था। इस सम्प्रदाय के मतानुसार 'काल' शब्द का 'का' उस कारण का प्रतीक है जो कि सर्वकारण-रहित तत्त्व में अन्तर्निहित रहता है और 'ल' उस लय का प्रतीक है जो सतत रूप से सभी लोकों एवं वस्तुओं को सृष्टि में लय हो जाने का सङ्केत करता रहता है। 'चक्र' शब्द 'च' चञ्चल चित्त का प्रतीक है और 'क्र' शब्द उसके क्रम का विकास का पूर्ण विरोध करने की ओर सङ्केत करता है। —

"ककारात् कारणे शान्ते लकाराल्लयोत्र वै।
चकाराच्चलचित्तस्य क्रकारात् क्रमबन्धनैः॥"

कुछ विद्वानों के मतानुसार आदि बुद्ध का सिद्धान्त 'कालचक्र-यान' से प्रादुर्भूत हुआ। आदि बुद्ध –> ध्यानी बुद्ध –> बोधिसत्त्व (ध्यानी बुद्धों के मानवीय रूप)। ध्यानी बुद्ध बोधिसत्त्वों के स्रष्टा हैं और संख्या में पाँच हैं; किन्तु वज्रयान 'वज्रसत्त्व' नामक छठवाँ ध्यानी बुद्ध जोड़कर छः ध्यानी बुद्ध मानता है।

तान्त्रिकों की रहस्य-साधना 'वज्रसत्त्व' से ही सम्बद्ध है।

मुद्रा एवं आनन्द—तन्त्र में ये मुद्राएं मानी गयी हैं:—

(१) कर्ममुद्रा, (२) धर्ममुद्रा, (३) महामुद्रा तथा (४) सहजमुद्रा। 'कर्ममुद्रा' में विधि-निषेधपूर्वक अभिषेक आदि की क्रियाओं का पालन करना पड़ता है। 'धर्ममुद्रा' में ज्ञान का प्राधान्य रहता है। 'महामुद्रा' में शुद्ध अद्वैत ज्ञान का प्राबल्य रहता है। 'सहजमुद्रा' में पूर्ण योग की प्राप्ति हो जाती है। मुद्राएं शारीरिक चेष्टाएं नहीं प्रत्युत मानसिक स्थितियाँ हैं।

आनन्द की चार अवस्थाएं होती हैं: (१) आनन्द, (२) परमानन्द, (३) विरमानन्द तथा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(४) सहजानन्द। ये आनन्द, चार काया, चार योग एवं चार अवस्थाओं से सम्बद्ध हैं। प्रत्येक आनन्द के भेद चतुष्टय हैं।

आनन्द की इन चारों अवस्थाओं में से प्रत्येक के पुनः (१) काय, (२) वाक्, (३) चित्त तथा (४) मन—ये चार भेद हैं। इस तरह षोडश प्रकार के आनन्द हैं। 'सहजानन्द' ही प्रथम एवं अन्तिम आनन्द है।

षडङ्ग-योग—बौद्ध योग षडङ्ग-योग है जिसके निम्न अङ्ग हैं: (१) प्रत्याहार, (२) ध्यान, (३) प्राणायाम, (४) धारणा, (५) अनुस्मृति तथा (६) समाधि। प्राणायाम में वर्णित 'वायुओं' का पञ्चस्कन्धों, पञ्चभूतों एवं पञ्चध्यानी बुद्धों से सम्बन्ध बताया गया है —

(१) ललना—(इड़ा, वाम नाड़ी) –> अमिताभ –> जलतत्त्व

(२) रसना—(पिङ्गला, दक्षिण नाड़ी) –> रत्नसम्भव –> अग्नितत्त्व

(३) मलोत्सर्गकारिणी नाड़ी –> वैरोचन –> पृथ्वीतत्त्व

(४) मूत्रोत्सर्गकारिणी नाड़ी –> अमोघसिद्धि –> वायुतत्त्व

(५) मध्य नाड़ी—(अवधूती नाड़ी, सुषुम्णा) –> अक्षोभ्य –> शून्यतत्त्व

(६) वीर्यनाड़ी—(ज्ञानवाहिका नाड़ी) –> वज्रसत्त्व

'ललना' एवं 'रसना' की शुद्धि होने के अनन्तर इनका त्याग करके 'अवधूती नाड़ी' का सम्बल लेकर ही 'प्राणयोग' की साधना की जाती है। तान्त्रिक बौद्ध मत नाड़ीयोग के अतिक्रमणार्थ केवल चार चक्र ही मानता है: (१) निर्माणचक्र—नाभिस्थान स्थित, (२) सम्भोगचक्र—हृदयस्थान-स्थित, (३) धर्मचक्र—कण्ठस्थान स्थित तथा (४) उष्णीशचक्र—शीर्षस्थान स्थित। बौद्ध तन्त्रों में 'कुण्डलिनी' मूलाधार में न मानकर नाभि में स्थित मानी गयी है। यह अवधूती नाड़ी में से होते हुए सभी चक्रों का अतिक्रमण करके उष्णीश-चक्र तक पहुँच जाती है और यही योग का परम लक्ष्य है।

इन चक्रों में से प्रत्येक चक्र का सम्बन्ध एक विशेष काया से है: (१) नाभि—निर्माण काया, (२) हृदय—धर्म काया, (३) कण्ठ—सम्भोग काया, (४) उष्णीश—सहज काया।

खसमावस्था—'ख'='आकाश; 'समावस्था'=के समान अवस्था। उष्णीशचक्र को भेदन करके गगनवत् निर्मल चेतना की प्राप्ति एव अक्षय शान्ति तथा महा सुख को अधिगत चेतना का स्वरूपावस्थान ही 'खेचरत्व' या खसमावस्था कहलाता है।

वज्रजप—प्राणवायु का अवधूती मार्ग में प्रवेश करके चक्रों का भेदन करते हुए वायु को उष्णीशचक्र में प्रविष्ट कराकर 'खसमावस्था' की प्राप्ति ही वास्तविक 'वज्रजप' है। प्राणवायु के निरोध-सहित जप करने की क्रिया ही वस्तुतः पूर्ण फलप्रदायिका होती है।

महामुद्रा—शून्यता एवं करुणा का सामञ्जस्य ही 'महामुद्रा' कहलाता है। हिन्दू तन्त्रों के 'शिव' तथा 'शक्ति' बौद्ध तन्त्रों के 'शून्यता' और 'करुणा' (वज्र और कमल) के स्थानीय हैं। 'महामुद्रा' की प्राप्ति सर्वातिशायी सिद्धि है।

'एवं तत्त्व'—वज्रयानी तन्त्र-ग्रन्थों में 'प्रज्ञा' एवं 'उपाय' के ऐक्य के लिए 'एवं' बीज की कल्पना की गयी है। शिव-शक्ति के सामरस्य के समान ही 'एवं' बीज की स्थिति है। 'एवं' में 'ए'=मातृशक्ति, चन्द्र एवं प्रज्ञा का प्रतीक है, 'व'=शिवतत्त्व, सूर्य एवं उपाय का प्रतीक है तथा 'बिन्दु' दोनों के संयोग का प्रतीक है। 'एवं' शिव-शक्ति के सम्मिलन का प्रतीक कहा जा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सकता है। इसका तान्त्रिक रूप निम्न लिखित है —

एक समत्रिभुज के अन्दर दूसरा समत्रिभुज इस प्रकार स्थित हो कि अन्तर्स्थित त्रिभुज के तीनों कोण वाह्य त्रिभुज की तीनों भुजाओं के मध्यबिन्दु को स्पर्श करते हों और अन्तर्स्थित त्रिभुज के केन्द्र में एक बिन्दु हो।

डोम्बी तथा चाण्डाली एवं अवधूती मार्ग— ललना एवं रसना के एक स्थान पर मिलने पर ये दोनों 'अवधूती' के रूप में स्थित हो जाती हैं। अवधूती के विशुद्ध रूप को ही 'डोम्बी' कहा गया है। 'चाण्डाली' की विशुद्धावस्था ही 'डोम्बी' या 'बङ्गाली' कहलाती है। 'चाण्डाली' द्वैताद्वैत की स्थिति है; किन्तु 'डोम्बी' अद्वैतभावापन्नावस्था का नाम है। रसना एवं ललना की मध्यवर्तिनी नाड़ी ही अवधूती नाड़ी एवं उसका पथ अवधूती मार्ग कहलाता है जो कि 'अद्वय मार्ग', 'शून्य पथ' आदि अभिधानों से भी अभिहित की जाती है। जब ललना एवं रसना विशुद्ध होकर एकाकार हो जाती हैं तब उसे 'अवधूती' कहते हैं। ★★★

गत अगस्त अङ्क से आगे —

प्रकृति-प्रदत्त आठ चिकित्सक

—श्री विद्यानन्द प्रसाद 'ब्रह्मचारी', बी० ए० (आनर्स), एम० ए०

(६) **व्यायाम** : स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने के लिए व्यायाम बहुत ही लाभदायक है। व्यायाम के विषय में एक प्रसिद्ध विद्वान् का कहना है कि : "*Health is the vital principle of bliss & excercise of health*." अर्थात् आनन्द का मुख्य प्रनियम स्वास्थ्य है और स्वास्थ्य का मुख्य प्रनियम है व्यायाम। आयुर्वेद का मत है कि व्यायाम करने से शरीर का विकास सामञ्जस्यपूर्ण होता है, शरीर के अङ्गों की थकावट से व्यर्थ की काम-चेष्टा नष्ट हो जाती है, निद्रा खूब आती है और मन की चञ्चलता दूर होती है। इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा आलस्य मिटता है। नियमित व्यायाम से शारीरिक सौन्दर्य की वृद्धि होती है और मुख की कान्ति में निखार आता है।

आयुर्वेद के मर्मज्ञ आचार्य वाग्भट्ट ने लिखा है :

लाघवं कर्मसामर्थ्य दीप्तोग्निर्मेदसः क्षयः।
विभक्त-घन-गात्रत्वं व्यायामादुपजायते।
विरुद्धं वा विदग्धं वा भुक्तं शीघ्रं निपच्यते।
भवन्ति शीघ्रं नैतस्य देहे शिथिलतोदयः॥
(अष्टांगहृदय)

भावार्थ यह है कि व्यायाम से शरीर में स्फूर्ति आती है, कार्य करने की शक्ति बढ़ती है, जठराग्नि प्रज्वलित होती है, मोटापा नहीं रहता तथा शरीर के सब अङ्ग पुष्ट होते हैं। इससे प्रकृति के विरुद्ध अथवा गरिष्ठ भोजन भी शीघ्र पच जाता है तथा शरीर में जल्द शिथिलता नहीं आ पाती।

जीवन में प्रसन्नता, स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य के लिए व्यायाम नितान्त आवश्यक है। महर्षि चाणक्य ने लिखा है : '**धर्मार्थकाममोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम्**—अर्थात् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चारों का मूल आधार स्वास्थ्य ही है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सब का गुरु व्यायाम है। पुस्तक पढ़ना भी व्यायाम ही है। इस व्यायाम को बौद्धिक व्यायाम कहते हैं। प्रसिद्ध विद्वान् जे० बी० स्काट ने कहा है : "*Walking at a moderate pace is a good excercise. It costs nothing except the sole of your shoes.*" अर्थात् मध्यम गति से भ्रमण एक सुन्दर व्यायाम है, इसमें खर्च कुछ भी नहीं होता, केवल जूते का तला घिसता है।

व्यायाम के विषय में एक कवि ने क्या ही सुन्दर कहा है :

"शक्ति बढ़े फुर्ती रहे, चोट न अधिक पिड़ाय।
अन्न पचे चंगा रहे, कसरत सदा सहाय।"
"औषध नहिं व्यायाम समाना।
व्यय नहिं तनिक रु लाभ महाना।"

केवल सदाचार और व्यायाम के बल पर ही ब्रह्मचर्य का पालन सम्भव हो सकता है। व्यायाम से दुर्बल व्यक्ति भी महान् बलवान् बन जाता है तथा रोगी पूर्ण नीरोग हो जाता है। प्रोफेसर राममूर्त्ति को कौन नहीं जानता जो आधुनिक भीम के नाम से जगत् प्रसिद्ध हुए। वे बचपन में रोगी व दुर्बल थे, किन्तु व्यायाम के नियमित अभ्यास से महान् बलशाली, आरोग्य-सम्पन्न और भाग्यशाली हुए थे। इस विश्व में जितने बड़े-बड़े पहलवान, निर्विकारी, ब्रह्मचारी और दीर्घजीवी दिखायी देते हैं; इसका असली रहस्य एकमात्र व्यायाम ही है।

व्यायाम खुली हवा में करना चाहिए और नाक से श्वास लेना चाहिए। स्वास्थ्य-रक्षा में व्यायाम बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग अदा करता है।

(७) विचार : विचार-शक्ति में एक महान् उद्देश्य छिपा रहता है। बड़े-बड़े सिद्ध पुरुष और महात्मा लोग अपने विचार-संचरण-शक्ति के द्वारा संसार के कोने-कोने तक योग्य व्यक्तियों तक अपना सन्देश पहुँचाते हैं, ऐसा स्वामी शिवानन्द सरस्वती का अकाट्य सत्य कथन है।

"किसी प्रकार की श्राव्य वाणी के बिना ही आप दूसरों पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं। इसके लिए संकल्पपूर्वक विचार पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है। इसे टेलीपैथी (*Telepathy*) (विचार-संचरण-शक्ति) कहते हैं।" (योग-वेदान्त पृष्ठ ३ अङ्क १ वर्ष २१)।

हमें अपने विचारों को सदा-सर्वदा शुद्ध एवं पवित्र रखना चाहिए। सभी स्त्रियों को मातृभाव की पवित्र दृष्टि से देखना चाहिए। हमें हमेशा वृद्धा को मां, युवती को बहिन एवं छोटी लड़की को अपनी कन्या समझना चाहिए। इसी के सम्बन्ध में सन्तशिरोमणि तुलसीदास जी ने कहा है, 'जो दूसरे के धन को पत्थर एवं दूसरे की स्त्री को माता के समान समझे और इतने पर भी यदि उसे स्वर्ग न मिले तो तुलसीदास उत्तरदायी है।' विचार-शक्ति मनुष्य के जीवन में एक महान् क्रान्ति ला सफलता के चरम सोपान पर प्रतिष्ठित कर देती है। विचार एक शक्ति है। प्रत्येक मनुष्य को विचार-शक्ति से काम लेना चाहिए।

(८) निद्रा : जिस प्रकार स्वास्थ्य-रक्षा के लिए शुद्ध वायु, जल, सूर्य और भोजन की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार निद्रा भी परमावश्यक है। एक स्थल पर कहा गया है :

"निद्रा तु सेविता काले धातुसाम्यमतिन्द्रताम।
पुष्टिं वर्णं बलोत्साहं बह्विदीप्ति करोति हि॥"

अर्थात् रात्रि में ठीक समय पर सोने से धातु ठीक अवस्था में रहती है और आलस्य दूर होता है; पुष्टि, कान्ति, बल और उत्साह बढ़ता है तथा अग्नि दीप्त होती है। स्वास्थ्य के लिए प्रगाढ़ निद्रा आवश्यक है। दिन भर के घोर श्रम के अनन्तर रात्रि में शान्तिपूर्वक सोना चाहिए।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सोते समय शरीर का वस्त्र ढीला होना चाहिए। उत्तम स्वास्थ्य के लिए सात्त्विक निद्रा आवश्यक है। दिन के समय सोने से विविध प्रकार की व्याधियाँ आ घेरती हैं।

यथाकाल निद्रा से निम्नलिखित लाभ होते हैं : (१) नियमपूर्वक सोने से सारी श्रान्ति दूर हो जाती है। (२) नवीन रूप से काम करने की नयी शक्ति प्राप्त होती है। (३) आयुर्बल बढ़ता है। (४) स्वप्न-दोष, धातुदौर्बल्य, शिररोग, आलस्य, अल्पमूत्र और रक्त-विकार आदि से रक्षा होती है। (५) मन तथा इन्द्रियों को विश्राम मिल जाता है।

ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों को दस बजे रात्रि तक अवश्य सो जाना चाहिए और प्रातः-काल चार बजे उठ जाना चाहिए। स्वस्थ मनुष्य को कम से कम छः घण्टे तक अवश्य सोना चाहिए।

विभिन्न प्रकार के व्यायाम, प्राणायाम तथा शरीर पर तेल की मालिश गहरी निद्रा लाने के प्राकृतिक साधन हैं। सोने से पूर्व मस्तिष्क को समस्त शोक, चिन्ता और भय से रहित कर शयन करना चाहिए। सोने से पूर्व प्रसन्नता, सन्तोष और धैर्य के साथ सफलता की कामना करें। इससे आप प्रातःकाल अपने में महान् परिवर्तन पायेंगे। सोने से कम से कम तीन घण्टे पूर्व भोजन से निवृत्त हो जाना चाहिए।

उपर्युक्त प्रकृति-प्रदत्त आठ चिकित्सकों के समुचित सेवन से मनुष्य का जीवन स्वस्थ, समृद्ध और सुख-सम्पत्ति तथा आनन्द से परिपूर्ण और आयुष्मान् होता है। अतः सुधी व्यक्ति को चाहिए कि जीवन में आकांक्षित पदार्थों के प्राप्त्यर्थ इस लेख में संक्षेप रूप से निर्दिष्ट विधि को निज जीवन में यथासम्भव व्यवहार में लावें। ★★★

आश्रम समाचार—

महाशिवरात्रि

पवित्र महाशिवरात्रि प्रमुखालय-आश्रम में गत १३ फरवरी को मनायी गयी। प्रातः बड़े तड़के ही ब्राह्ममुहूर्त्त में वैदिक सूक्तों तथा धर्मग्रन्थों के स्तवनों से प्रार्थना की गयी। आश्रम की यज्ञशाला में विश्व-शान्ति के लिए एक विशेष हवन (यज्ञ) किया गया, जिसमें यजुर्वेद के रुद्र-अध्याय के मन्त्रों के उच्चारण के साथ आहुतियाँ निवेदित की गयीं। यज्ञ की पूर्णाहुति मध्याह्न के लगभग सम्पन्न हुई।

इस कार्यक्रम के अपराह्नकालीन सत्र का सारा समय भगवान् की, विशेषकर भगवान् के शिव-रूप के प्रसङ्ग की उपासना की महिमा-सम्बन्धी प्रवचनों में प्रयुक्त हुआ। इस अवसर पर प्रवचन करने वाले आश्रम के स्वामी जन 'आध्यात्मिक जीवन में भक्ति और उपासना का स्थान' विषय पर बोलते हुए उसके प्रायः प्रत्येक पहलू को स्पर्श किया। इन प्रवचनों में यह दर्शाया गया कि धार्मिक अनुष्ठान और धार्मिक चेतना में सावधानीपूर्वक विभेद करना आवश्यक है। लोग बहुधा धर्म को आचार एवं नित्यकर्म से अभिज्ञात करते हैं और इन्हें वे सामाजिक रूढ़ि, प्रथा तथा जिस परिवार तथा वर्ग से उनका सम्बन्ध होता है उसके परम्परागत प्रचलन के रूप में बनाये रखते हैं। धर्म शब्द से हमारा जो कुछ अभिप्राय है, धार्मिक भावना उसका सार है और अनुष्ठान के इन रूपों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से भिन्न है। रूप अथवा आकार भावना के मर जाने पर भी बना रह सकता है। जैसे कि शव में मानव-प्राणी के सभी उल्लक्षण वर्त्तमान रहते हैं तथापि वह (शव) प्रत्यक्ष रूप से उस (मानव-प्राणी) से भिन्न होता है। सभी उदात्त आकांक्षाओं के तले, उसके तल-शैल के रूप में धर्म के आधार की अन्तः सचेतन अभिवृत्ति वर्त्तमान रहती है। इस अभिवृत्ति से वञ्चित रहकर धार्मिक अनुष्ठान अपनी अर्थवत्ता तथा उद्देश्य खो बैठता है। धर्म कोई अनुष्ठान नहीं है, वरन् यह तो चेतना की एक स्थिति है। तथापि चेतना द्वारा अनुप्राणित होने पर वह अनुष्ठान और कर्त्तव्य-पालन का रूप ले सकता है।

जब जागतिक जीवन धार्मिक आकांक्षाओं से प्रभृत होता है तो धर्म के रूप में उपासना तथा ध्यान एक आवश्यकता बन जाते हैं। धार्मिक भावना अथवा आकांक्षा, यद्यपि सम्पूर्ण पदार्थों में विद्यमान अग्नि की भाँति गुप्त रहती है; पर जब वह जीवन के नानाविध क्षेत्रों तथा लोगों की विभिन्न प्रवृत्तियों के माध्यम से क्रियाशील होती है, तो प्रत्यक्ष हो उठती है। यह यद्यपि समाज की किसी भी गतिविधि तथा प्रावस्था के द्वारा कार्य कर सकती है, पर यह भगवान् के—भगवान् जो कि धार्मिक चेतना द्वारा धारण किया सर्वोत्कृष्ट रूप है—सम्बोध में अपनी चरमावस्था प्राप्त कर लेती है। पुनः, भगवान् जैसा वह है उसका वह रूप, मानव-मन की परिसीमाओं के कारण, अचिन्त्य है और यही कारण है कि उस दिव्य अभिव्यक्ति की कल्पना के ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—सृजक, परिपालक तथा संहारक—के रूप में विभाग करने पड़े। यद्यपि वेदों तथा उपनिषदों में भी ऐसी कल्पना के चिह्न दृष्टिगत होते हैं; पर महाकाव्यों और पुराणों में उनमें निखार आ गया है। जहाँ कि पुराणों में त्रिमूर्त्ति को तीन भिन्न दिव्य विभूतियों का सन्निवेश मानने की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है, वहीं महाकाव्य, जो कि धर्म के इतिहास में एक पूर्वतन प्रावस्था है, तीनों रूपों में आङ्गिक सम्बन्ध का प्रतिपादन करता है और जब त्रिमूर्त्ति में से किसी एक को उपासना और ध्यान के लिए विशेष रूप से वरण कर लिया जाता है तब भी परम पूर्णता के रूप में भगवान् की अखण्डता की कल्पना की जाती है। इस भाँति पवित्र महाशिवरात्रि को एक व्रत तथा संयम के रूप में मनाने वाले भक्तजन जिन महादेव शिव का परम आराध्य, मङ्गलमय तथा कल्याणकारी के रूप में ध्यान करते हैं, वह एकोद्भवता की पृष्ठभूमि परमशिव है जिन्हें यद्यपि ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों नामों में किसी एक से अभिहित किया जा सकता है, तथापि वह एक में सर्व बने रहते हैं।

सूर्यास्त के समय भगवान् विश्वनाथ के मन्दिर में इस पर्व का मुख्य कार्य, पूजा का कार्य-क्रम आरम्भ हुआ जो १४ फरवरी के प्रातःकाल तक चलता रहा। सङ्कीर्त्तन और भजन, अभिषेक, अर्चना तथा मङ्गल-आरती पूजोत्सव के विषय थे। उत्सव की समाप्ति पर सभी उपस्थित भक्तों को प्रसाद वितरण किया गया।

धर्म के मनोविज्ञान तथा आध्यात्मिक गूढ़ भावों में वैदिक यज्ञ के स्थान का उल्लेख कर देना सङ्गत ही होगा। ऐसा विश्वास किया जाता है कि महान् आचार्य सायण ने वैदिक मन्त्रों के भावों के अर्थ-निरूपण में अपने को अधिकतर यज्ञ तथा प्रकृति-सम्बन्धी अर्थ तक ही सीमित रखा। यद्यपि यह सच मानकर कि सायण ने, जैसा कि कुछ भारतीय भाषाविदों का मत है, वेद के इस पहलू पर विशेष बल दिया—यह उपगमन अनुज्ञेय है; तथापि यह निःशङ्क रूप से कहा जा सकता है कि वेद-मन्त्रों के प्रयोग के पीछे उद्दिष्ट अभिप्राय के अतिरिक्त अन्य अभिप्राय भी हैं। प्रसिद्ध वैदिक कोष एवं निरुक्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के रचयिता यास्क के अनुसार मन्त्रों के न्यूनातिन्यून तीन प्रयोग हैं : अधियज्ञ—यज्ञ सम्बन्धी; अधिदैव—देवता सम्बन्धी, तथा अध्यात्म—आत्मा अथवा भूतमात्र के पृष्ठभाग में वर्त्तमान परम सत्-सम्बन्धी।

समीप का एक विशेष उदाहरण लें। यजुर्वेद का रुद्र-अध्याय, जिसमें भगवान् रुद्र-शिव को सम्बोधित करने वाले सूक्त हैं, प्रकृति की शक्तियों को, मानव-समाज को तथा भक्त की मनोदशा को निर्देश करने वाली भागवत सत्ता के आवाहन के मन्त्रों से ओतप्रोत है। ये प्रार्थनाएं पक्ष और विपक्ष दोनों के लिए ही प्रयुक्त होती हैं। यह एक ऐसी बात है जो कि धर्म के अर्थ से अनभिज्ञ प्रेक्षक को वाह्यत: विचित्र-सी लग सकती है। यह किसी सीमा तक मन्त्रों का अधिभूत प्रयोग है जोकि प्रत्यक्षत: उनके प्रयोग का प्रारम्भिक अथवा निम्नतम रूप है। इन्हीं मन्त्रों का इससे उच्चतर प्रयोग है अधियज्ञ। प्रयोग की इससे भी उच्चतर अवस्था अधिदैव है जिसमें परात्पर भगवान् का आवाहन किया जाता है। यहाँ धर्म वाह्याकार से ऊपर उठकर आन्तरिक भक्ति का रूप ले लेता है; किन्तु मन्त्रों का सर्वोच्च प्रयोग है अध्यात्म, जिसमें सार्वभौम सत् का उन्हीं स्तवनों से आवाहन किया जाता है जो कि अन्यथा निम्नतर रूपों में प्रयोज्य हैं। उदाहरण-स्वरूप शत्रुओं पर विजय पाने की प्रार्थना, जो कि वेद-संहिताओं में सामान्य रूप से पायी जाती है, इन सभी रूपों में प्रयुक्त हो सकती है। अधिभूत के रूप में यह व्यक्ति की दैनिक आवश्यकताओं की (योग-क्षेम की) पूर्त्ति का माँग-पत्र है। अधियज्ञ के रूप में यह यज्ञ में आहुति रूप में निवेदित भोग-पदार्थ को ग्रहण करने के लिए देवों का आवाहन है। अधिदैव के रूप में यह भगवान् के प्रेम के लिए, भगवत्कृपा के लिए हृदय का भावातिरेक है। रुद्र-अध्याय में भगवान् की उच्च और निम्न में, विशाल और लघु में, सद् और असद् में और यहाँ तक कि सामान्यत: जो व्यक्ति तथा पदार्थ घृणा के पात्र माने जाते हैं उनमें भावना कर उसकी प्रार्थना करने की इस विधि के व्यापक प्रयोग की प्रचुरता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब चेतना विराट्-दर्शन तक उन्नत हो जाती है तो भौतिक, सामाजिक तथा नैतिक मूल्य रूपान्तरित हो जाते हैं और वह (चेतना) एक ऐसी आध्यात्मिक प्रास्थिति धारण कर लेती है जो इन सभी मानवीय निर्णयों तथा मूल्याङ्कनों से परे है। यह एक ऐसी बात है जोकि सांसारिक मानव के लिए बोधगम्य नहीं है और यही कारण है कि वह इसका ठीक मूल्याङ्कन भी नहीं कर पाता; किन्तु मन्त्र अपने अध्यात्म-रूप में अज्ञान, जो कि अन्ततः मनुष्य का एकमात्र शत्रु है, के विनाश हेतु प्रार्थना का रूप लेता है। इस भाँति वेद के प्रत्येक मन्त्र में उसका चतुर्विध अर्थ अन्तर्भूत है और यह ठीक ही कहा गया है कि 'अनन्ता वै वेदा:'—वेद की अभिव्यञ्जना-शक्ति अपरिसीम है।

विदेश के विद्यार्थी

इंग्लैण्ड के महाविद्यालय से बत्तीस विद्यार्थी गत ग्यारह फरवरी को प्रमुखालय आश्रम में पधारे तथा महासचिव श्री स्वामी कृष्णानन्द जी के एक विशेष प्रवचन में सम्मिलित हुए। इन विद्यार्थियों के लिए दिये गये प्रवचन का विषय था - 'विचार और क्रिया के तर्कशुद्ध अनुक्रम में मानव-जीवन के यथारीति उपगमन की प्रविधि' जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक व्यवसाय एवं प्रवृत्ति में अध्यवसाय का आधार होना चाहिए। मानव-जीवन की सामाजिक संरचना का विश्लेषण उसके वैज्ञानिक आधार का मार्ग दर्शाता है, जिसकी पुनः व्याख्या एकमात्र व्यष्टि मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की संरचना के शब्दों में ही की जा सकती है। व्यष्टि मानव विश्व की, विशाल जगत् की प्रक्रिया में अविमोचनीय रूप से अन्तर्धृत है—जिसके विश्लेषण से हम इस आश्चर्यकर नवीन तथ्य की खोज तक पहुँचते हैं कि हमारा द्रव्य ब्रह्माण्ड के द्रव्य का सहविस्तारी है। हम अपने को विश्व-नागरिक मानते तथा वैश्व शक्तियों की सम्भाविताओं तक पहुँचने में सक्षम अनुभव करते हैं। अन्त-र्स्थित मानव तथा वाह्यस्थित जगत् एक ही सिक्के के मुख एवं पृष्ठ हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

THE YOGA-VEDANTA MAGAZINE

FORM IV

STATEMENT ABOUT THE OWNERSHIP AND OTHER PARTICULARS OF THE YOGA-VEDANTA MAGAZINE

1. Place of Publication........................The Divine Life Society, P.O. Sivanandanagar, U.P.
2. Periodicity of its Publication............Monthly
3. Printer's Name..........................Swami Chandrashekharananda
   Nationality..........................Indian
   Address..........................The Divine Life Society, P.O. Sivanandanagar, U.P.
4. Publisher's Name..........................Swami Chandrashekharananda
   Nationality..........................Indian
   Address..........................The Divine Life Society, P.O. Sivanandanagar, U.P.
5. Editor's Name..........................Swami Chandrashekharananda
   Nationality..........................Indian
   Address..........................The Divine Life Society, P.O. Sivanandanagar, U.P.
6. Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one percent of the total capital. — The Divine Life Trust Society, P.O. Sivanandanagar, U.P.

I, Swami Chandrashekharananda, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

March 1, 1972.

Swami Chandrashekharananda
Signature of Publisher

आवश्यक सूचना :

श्री रामनवमी-महोत्सव

श्री रामनवमी का पवित्र त्यौहार भगवान् श्री विश्वनाथ-मन्दिर में २३ मार्च, १९७२ ई० को मनाया जायगा। १६ मार्च १९७२ से २३ मार्च १९७२ तक पवित्र श्री राममन्त्र का जप होगा। अन्तिम दिन सार्वजनिक कल्याण तथा विश्व-शान्ति और भक्तों के वैयक्तिक कल्याण के लिए विशेष सङ्कल्प से यज्ञ किया जायगा। अर्चना के साथ महापूजा की जायगी। सायङ्काल को आश्रम के भजन हाल में सत्सङ्ग में एक विशेष प्रार्थना-सभा भी होगी। श्री रामनवमी-महोत्सव में जो भक्त सम्मिलित होना चाहते हैं वे कृपया दिव्य जीवन सङ्घ के महासचिव से सम्पर्क करें।

—दिव्य जीवन सङ्घ

योग-वेदान्त आरण्य अकादमी (दिव्य जीवन सङ्घ), शिवानन्दनगर, के लिए श्री स्वामी चन्द्रशेखरानन्द सरस्वती द्वारा सम्पादित और प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त आरण्य अकादमी प्रेस', शिवानन्दनगर, (हिमालय), उ०प्र० में मुद्रित।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi